ओ३म्

आर्यसमाज

का

वर्तमान और भविष्य

□

लेखक

दत्तात्रेय वाब्ले (आर्य)

प्रधान

आर्यसमाज, अजमेर

संस्थापक प्राचार्य, दयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय अजमेर

निमंत्रित प्रोफेसर मार्शल विश्वविद्यालय यू.एस.ए. (अमेरिका)

ओ३म्

आर्यसमाज

का

वर्तमान और भविष्य

□

लेखक

दत्तात्रेय वाब्ले (आर्य)

प्रधान

आर्यसमाज, अजमेर

संस्थापक प्राचार्य, दयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय अजमेर
निमंत्रित प्रोफेसर मार्शल विश्वविद्यालय यू.एस.ए. (अमेरिका)

प्रकाशक : आर्य समाज, अजमेर

प्रकाशन वर्ष : अप्रैल 1995

मूल्य : रुपये 10/-

मुद्रक : श्री आर्य प्रिन्टर्स, अजमेर

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

भारत के पुनर्जागरण में आर्य समाज की स्थापना एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना मानी जाती है। आर्य समाज न केवल एक क्रांतिकारी धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन रहा है बल्कि मुस्लिम और ब्रिटिशकाल की लम्बी राजनैतिक दासता के बाद संभवतः देश का सबसे पहला राष्ट्रीय आन्दोलन भी था जिस काल और परिस्थिति में यह सामाजिक धार्मिक और राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारंभ हुआ, वह भी उसके सूत्रधार महर्षि दयानन्द सरस्वती की अद्भुत दिव्य दृष्टि और साहस का परिणाम था।

आश्चर्यजनक घटना :

जैसा प्रसिद्ध इतिहासकार जैसवाल ने कहा है कि देश की उस समय की परिस्थिति में ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव स्वयं इतिहासकारों को आश्चर्यचकित करने वाली घटना है। रक्तरंजित मुस्लिम दासता के बाद एक अन्य विदेशी शक्ति अर्थात् अंग्रेजी राज्य की स्थापना को राजा राममोहन राय जैसे व्यक्ति तक एक दैवी वरदान समझते थे। मराठे, राजपूत और सिक्ख जैसी राजनैतिक शक्तियां भी यह अनुभव करने लगी थी कि मुगल साम्राज्य के पतन से उत्पन्न अराजकता की तुलना में अंग्रेजों की यह दूसरी दासता संभवत कहीं कम आपत्तिजनक है।

महर्षि का योगदान :

ऐसे सर्वथा प्रतिकूल वातारण में महर्षि दयानन्द की यह घोषणा सर्वथा अप्रत्याशित थी। विदेशी राज्य चाहे माता-पिता के समान कल्याणकारी हो पर वह स्वदेशी राज्य की बराबरी नहीं कर

सकता—Good government is no substitute for self government पश्चिम की यह मान्यता एक ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रतिपादित करना इतिहासकारों के लिये एक सचमुच आश्चर्यचकित करने वाली बात है, जो व्यक्ति न अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा का परिणाम था और न ही पश्चिम की चकाचौंध करने वाली सभ्यता का प्रशंसक। दयानन्द की सारी शिक्षा केवल संस्कृत में हुई थी और अंग्रेजी तथा पश्चिमी विचारधारा का उन पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा था। स्वराज्य के संबंध में उनकी इस मान्यता के समान ही धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में उनके द्वारा प्रेरित क्रांति भी इतनी ही अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक थी। सदियों के राजनैतिक ही नहीं धार्मिक और समाजिक अन्याय और अत्याचार की आदि समझी जाने वाली हिन्दू जाति का स्वाभिमान तो दूर अपने भविष्य के संबंध में विश्वास तक नष्ट हो चुका था और वह सर्वथा निराश हो चुकी थी, इसी का परिणाम है कि उसके साधु संतों तक ने इस लोक के दयनीय जीवन को क्षण भंगुर तथा केवल माया का नाम देकर जनसमुदाय को केवल मृत्यु के बाद के दूसरे जीवन के सब्जबाग दिखाकर संतोष और धैर्यपूर्वक इस जीवन की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक ही नहीं राजनैतिक दुर्गति को सहन करने का उपदेश देना प्रारंभ कर दिया था। परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म ही नहीं हिन्दू समाज तक सर्वथा व्यक्तिवादी लक्ष्य का शिकार बन गया था तथा समाज और देश के प्रति अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व की अनुभूति की क्षमता तक खो चुका था।

स्वराज्य और स्वराष्ट्र का आधार :

महर्षि दयानन्द का देश के पुनर्जागरण में दूसरा महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने यह अनुभव किया कि धार्मिक और सामाजिक अंध विश्वासों और कुरीतियों को दूर किये बिना देश न स्वराज्य प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है और न ही राष्ट्र

बनने की क्षमता। महर्षि दयानन्द की यह मान्यता कितनी सही थी यह बात स्वयं तत्कालीन अंग्रेज विचारकों और लेखकों के देश की तत्कालीन परिस्थिति के संबंध में किये गये विश्लेषण से सिद्ध होती है।

सरजान सिली नामक लेखक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Expansion of England" में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि —

"Facile comprehensiveness of Hinduism," whin, in his opinion, "has enfeebled it as a uiting principle and rendered it incapable of generating true national feeling."

अर्थात् "हिन्दू धर्म की ऊपरी सब ग्राहित्यता अर्थात् उदारता के परिणामस्वरूप वह इतना अशक्त बन गया है कि उसमें न अपने अनुयायियों में एकता की शक्ति और न वास्तविक अर्थों में राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करने का सामर्थ्य बाकी रहा है।"

इसी प्रकार एक अन्य विचारक सर हरबर्ट रिजले के शब्दों में—

It may be admitted that the flame of patriotic enthusiasm will not readily arise from the cold grey ashes of philosophic compromise, and that before Hinduism can inspire an active sentiment of nationality, it will have to undergo a good deal of stiffening and consolidation.

अर्थात् "यह स्वीकार करना होगा कि हिन्दू धर्म की दार्शनिक समझौतावाद की ठंडी राख में से देशभक्ति के उत्साह की ज्योति आसानी से उत्पन्न नहीं हो सकती। सक्रिय देशभक्ति की भावना उत्पन्न करने के लिये हिन्दू धर्म को पर्याप्त निश्चित और संगठित स्वरूप देकर पुर्नजीवित करना होगा।"

महर्षि दयानन्द ने यही आश्चर्यजनक कार्य करने का प्रयत्न किया। आर्य समाज के प्रथम तीन नियम इसके प्रमाण है, जिनके द्वारा उन्होंने एक ईश्वर और वह भी मूर्तियों आदि से मुक्त निराकार तथा एक धर्म पुस्तक अर्थात् "वेद" को समस्त धार्मिक मान्यताओं का आधार घोषित कर वैदिक धर्म के रूप में उपर्युक्त बिना शक्ल सूरत के और ठंडी राख के समान निर्जीव हिन्दू धर्म को एक नवीन सुनिश्चित और संगठित स्वरूप देने का प्रयत्न किया। इस तथ्य को स्वयं हिन्दू धर्म के अनेक समालोचकों ने निम्न शब्दों में स्वीकार किया है।

श्री ब्लन्ट आई. सी. एस. ने 1911 की जनगणना की रिपोर्ट में लिखा है—

An element of strength in the Arya Samaj is its freedom from "the formlessness and indefiniteness of Hindu polytheism on one side and the weak eclecticisum of such reformed sects as the Brahma Samaj on the others."

अर्थात् "आर्य समाज की विशेषता या शक्ति का एक कारण यह है कि वह जहाँ एक ओर बहुदेवतावादी हिन्दू धर्म की अनिश्चितता और स्वरूप हीनता से मुक्त है वहीं दूसरी ओर उसने कहीं की ईंट कहीं का रोडा इकठ्ठा कर हिन्दू धर्म में सुधार करने के ब्रह्म समाज आदि जैसे आन्दोलनों की निर्बलता से बचने का प्रयत्न किया है।"

एक अन्य अंग्रेज लेखक के शब्दों में—

"The Arya Samaj, "he adds," seems to be striking out of a path which may lead in this direction, but the tangled jungle of Hinduism bristles with obstacles and the way is long." In another place he give the Aryas the credit of "a definite creed resting upon scriptures of great

antiquity and high reputation, "and characterises their teaching as" bold and masculine "and" free from the limp eclecticism which has proved fateal to the Brahmo Samaj.

अर्थात् हिन्दू धर्म की उपर्युक्त निर्बलताओं को दूर कर उसे एक निश्चित और दृढ़ स्वरूप देने का आर्य समाज ने प्रयत्न किया है। यद्यपि हिन्दू धर्म के उलझे हुए तथा दिगभ्रम करने वाले जंगल के कारण आर्य समाज का मार्ग लम्बा है और उसमें अनेक बाधायें हैं किन्तु उसके संस्थापक ने उसे वेद जैसे प्राचीन सर्वमान्य धर्मग्रंथ पर आधारित करके निश्चित मान्यता प्रदान की है जिसके कारण उसे एक साहसी और पौरुषीय शौर्य और साहसी धर्म की क्षमता प्राप्त हुई है परिणामस्वरूप वह मान्यताओं की उस खिचड़ी से मुक्त है जिसने ब्रहम समाज को समाप्त प्राय कर दिया है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में जो क्रांतिकारी परिवर्तन करने की प्रेरणा दी उसका भी एक मुख्य कारण उस राष्ट्रीय एकता का आधार रखना था जिसके बिना न देश स्वतंत्र हो सकता था और न उसका स्वराज्य सशक्त और चिरस्थाई बन सकता था।

देश की स्वाधीनता के आज लगभग 48 वर्ष बीत जाने के बाद भी कुछ व्यक्ति और विशेषकर राजनैतिक स्वार्थ से प्रेरित संगठन इस तथ्य को स्वीकार नहीं करना चाहते जिसे सरवेलेन्टाइन सिरोल जैसे लन्दन टाइम्स के सम्पादक ने अपनी सनसनी खेज पुस्तक "इंडियन अनरेस्ट" में पृष्ठ संख्या 161 पर बहुत पहले अनुभव किया था उनके अनुसार—

"The whole drift of Dayanand's teachings is far less to reform Hinduism than to range it into active resistance tothe alien influences with threatened, inhis opinion, to denationalise it."

अर्थात् "दयानन्द की शिक्षाओं का मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्म में सुधार करना इतना नहीं था जितना आर्य समाज द्वारा विदेशी प्रभाव के विरुद्ध सक्रिय विद्रोह करना था" वे पुन: लिखते हैं कि—

That the Arya Samaj, which shows the impress of Western influence in so much of its social work, should at the same time have associated itself so intimately with a political movement directed against British rule, is one of the many anomalies presented by the problem of Indian unrest."

अर्थात् "भारत में उत्पन्न वर्तमान असंतोष का यह एक विरोधाभास है कि जो आर्य समाज अपने सामाजिक सुधार कार्य में पाश्चात्य प्रभाव को प्रदर्शित करता है वहीं अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध किये जा रहे आन्दोलन के साथ भी इतना ही निकटता से जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर विदेशी समालोचक आर्य समाज को धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन की आड़ में एक राजद्रोही आन्दोलन समझते थे वहीं दूसरी लोकमान्य तिलक जैसे हमारे राष्ट्रीय नेता इन सुधारों का इसलिये समर्थन नहीं करते थे कि उनकी सम्मति में इनके पीछे अंग्रेजी राज्य की विदेशी और विधर्मी प्रेरणा है। महर्षि दयानन्द की इन दोनों से भिन्न यह मान्यता थी कि जिन धार्मिक और सामाजिक निर्बलताओं के कारण हिन्दू समाज वर्षों विदेशी दासता का शिकार रहा है उनके निराकरण के बिना न स्वराज्य प्राप्त हो सकता है और न चिरस्थाई राष्ट्रीयता की नींव पड़ सकती है।

जैसा इस पुस्तक के पाँचवे अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि उपर्युक्त पृष्ठ भूमि में आर्य समाज एक राष्ट्रीय आन्दोलन है जिसने देश में पूर्ण स्वराज्य और चिरस्थायी राष्ट्रीयता की नींव रखी।

इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 में हुई जब कि उससे 10 वर्ष पूर्व 1875

में आर्य समाज की स्थापना की गई थी, इतना ही नहीं श्रीपट्टाभि सीता रमैया ने "हिस्ट्री ऑफ दी कांग्रेस" कांग्रेस के प्रारंभिक अधिवेशन राष्ट्रीय गान के स्थान में गोड सेव दा किंग (God save the King) तथा अंग्रेजी राज्य के एक झंडे "यूनियन जेक" को फहरा कर प्रारंभ किया जाता था और उसके मंच से पहला प्रस्ताव ब्रिटिश सम्राट या साम्राजी के प्रति भारतवासियों की निष्ठा और वफादारी का विश्वास दिलाने के लिये पारित किया जाता था। ऋषि दयानन्द ने 1875 से पूर्व जिस पूर्ण स्वराज्य की सबसे पहले कल्पना की थी उसे सन् 1929 में लाहौर के अधिवेशन में लगभग 50 वर्ष के बाद कांग्रेस ने स्वीकार किया।

आर्य समाज की स्थापना तथा उसके 120 वर्ष के गौरवपूर्ण इतिहास के बाद आर्य समाज की क्या स्थिति है और उसका भविष्य क्या है, यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर न केवल उसके बल्कि हिन्दू समाज और देश के हित में मनन करना आवश्यक है।

आर्य समाज के सम्बन्ध में देश विदेश के प्रवुद्ध विचारकों की मान्यता महर्षि दयानन्द की 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की हिन्दुओं के लिये सर्वथा नवीन प्रेरणा के अनुसार उनके द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म को भी वैसा ही प्रचारक धर्म माना जाने लगा जैसा इस्लाम और ईसाई धर्म समझा जाता था परिणाम-स्वरूप इन दोनों धर्मों के प्रचारक देश विदेश में आर्य समाज को अपने प्रचार कार्य में सबसे बड़ी चुनौती समझते थे।

दुर्भाग्य से विश्वव्यापी एक प्रचारक धर्म होने संबंधी आर्य समाज के विरोधियों की आशंकायें और स्वयं आर्य समाज के प्रारम्भिक प्रचारकों की उतनी ही तीव्र अपेक्षायें और आशायें धीरे-धीरे निर्मूल सिद्ध होने लगी।

मुझे स्मरण है कि प्रारंभिक काल में अजमेर के विशाल नगर कीर्तनों और उतने ही विशाल जनसमूह की उपस्थिति में आयोजित वार्षिक उत्सवों में प्रसिद्ध भजनोपदेशक सुखलाल जी आर्य मुसाफिर

जब यह गीत गाते थे कि—

"आयेगें खत अरब से जिनमें लिखा यह होगा,
गुरुकुल का एक ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है ।।"

तो सारे श्रोता वैदिक धर्म की जय और महर्षि दयानन्द की जय के नारों से वातावरण में एक उत्साह की लहर फैला देते थे। इसी कारण आर्य समाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक स्वर्गीय प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न का—

"वेदों का डंका आलम में,
बजवा दिया देव दयानन्द ने ।।"

नगर कीर्तन का सबसे महत्वपूर्ण गीत होता था।

इस संदर्भ में आज आर्य समाज की क्या स्थिति है और उसका भविष्य क्या होगा, इन दोनों प्रश्नों पर इस पुस्तिका में विचार और मनन करने का प्रयत्न किया गया है। जैसा प्रथम दो अध्यायों में स्पष्ट किया गया है कि लेखक की यह मान्यता है कि हिन्दू धर्म न कोई संगठित धर्म है और न प्रचारक क्योंकि वस्तुत: वही धर्म प्रचारक हो सकता जिसकी कुछ निश्चित मान्यताएँ और सुसंगठित स्वरूप हो।

ऋषि दयानन्द ने इसलिये तथाकथित हिन्दू धर्म को वैदिक धर्म के रूप में एक निश्चित और सुसंगठित स्वरूप देने का प्रयत्न किया जैसा अनेक विचारकों की ऊपर लिखित सम्मतियों से स्पष्ट है।

आर्य समाज की प्रगति में शिथिलता का प्रारम्भ तभी से हुआ जब तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों और विशेषकर महात्मा गांधी के नेतृत्व स्वराज्य आन्दोलन की कुछ अवधारणाओं को स्वीकार कर आर्य समाज के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने अपने क्रांतिकारी सुधारों के लक्ष्य को स्थगित कर दिया ; परिणामस्वरूप आर्य समाज तथाकथित हिन्दू धर्म का केवल एक सुधरा हुआ आन्दोलन समझा जाने लगा और हिन्दू धर्म के रूपान्तरण के स्थान

में आर्य समाज का ही हिन्दूकरण होने लगा। इस अप्रत्याशित परिणाम के विरुद्ध स्वयं लाला लाजपतराय जैसे हिन्दू संगठन के एक प्रबल समर्थक तथा आर्य समाज के मूर्धन्य नेता ने स्पष्ट चेतावनी दी थी जिसे पृष्ठ 14 पर उद्धृत किया गया है।

पुस्तक के तीसरे अध्याय में इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों के संदर्भ में आर्य समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता पर विचार किया गया है ताकि समय रहते एक समय का यह "सशक्त और क्रांतिकारी आन्दोलन हिन्दू समाज के सबसे बड़े अभिशाप अर्थात् जातपांत की नमक की खान में विलीन होने के स्थान में अपने उस लक्ष्य और शिखर को प्राप्त कर सके जिसकी ओर एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स" के लेखक ने चेतावनी दी थी। महान दार्शनिक तत्ववेत्ता और क्रांतिकारी सुधारक महर्षि दयानन्द के स्वप्न को पूरा करने के लिये जिस आर्य समाज की स्थापना की गई वह वर्तमान चिन्ताजनक स्थिति और उसके भविष्य के बारे में अनेक शंकाओं के उपरान्त भी पूरा होगा, ऐसा लेखक का विश्वास है। यदि आर्य समाज के वर्तमान कार्यकर्त्ता और अनुयायी इस उद्देश्य की पूर्ति में असफल भी हो जायें तो भी ऋषि दयानन्द का दिव्य संदेश अपनी सफलता का कोई अन्य विकल्प या मार्ग तलाश कर लेगा, इस मान्यता का क्या आधार है उनमें से कुछ का विवेचन सत्यशोधक दयानन्द शीर्षक के चौथे अध्याय में करने का प्रयत्न किया गया है।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि आर्य समाज की वर्तमान स्थिति के अनेक कारणों में एक महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस का वह राजनैतिक आन्दोलन भी था जिसकी कुछ मान्यताओं के परिणामस्वरूप आर्य समाज जैसे क्रांतिकारी आन्दोलन को हानि उठानी पड़ी। इस दृष्टि से पांचवे अध्याय में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि आर्य समाज कोई सामूहिक तथा परिवर्तनशील राजनैतिक आन्दोलन नहीं है किन्तु धार्मिक, सामाजिक,

शैक्षिक आदि सब दृष्टियों से भी वह एक राष्ट्रीय तथा सार्वभौम अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है।

छठे और अंतिम अध्याय में भारतीय मुसलमानों की समस्या के अन्तर्गत उन एक दो प्रश्नों का विवेचन किया गया है जिनके कारण देश की स्वाधीनता के लगभग 50 वर्षों के बाद भी न केवल हमारे राजनेताओं को बल्कि आर्य समाज जैसे हिन्दुत्व की परिष्कृत कल्पना को सजीव करने वाले आन्दोलन को भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, हमारे देश के जो संगठन और नेता हिन्दूत्व पर अभिमान करने का आह्वान करते हैं उनके लिये भी यही समस्या है। इस पुस्तक के अन्य अध्यायों में आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में जो विवेचन किया गया है वह भी इसी सन्दर्भ में गंभीरता से विचार करने योग्य है।

नवीन अथवा सुधरे हुए हिन्दू धर्म को, वैदिक धर्म तथा उसके वर्तमान अनुयायियों को आर्य जैसे पुनरुत्थान "सूचक" नाम दिये जाते तो अधिक उपयुक्त होता। यह हमारी प्राचीन परम्परा रही है कि नवजीवन के साथ नाम परिवर्तन भी किया जाय इसलिये सन्यासियों तथा विवाह होने पर कन्याओं के अपने नवीन जीवन को सार्थक करने वाले नवीन नाम दिये जाते हैं किन्तु यदि कुछ व्यक्तियों का यही आग्रह है कि नवजागृत हिन्दू अपना पुराना नाम ही बनाये रखें तो, उसे इस योग्य बनाना होगा कि जिस पर अभिमान किया जा सके, जैसा पुस्तक के संबंधित अध्यायों में संकेत किया जा चुका है।

धर्म निरपेक्षता की विकृति :

राज्य की आधुनिक अवधारणा में धर्म निरपेक्षता एक सर्वमान्य आदर्श है। विशेषकर भारत जैसे बहुधर्मी देश में जहाँ के बहुसंख्यक हिन्दुओं में भी अनेक धार्मिक विभिन्नतायें हैं, यह आदर्श और भी प्रांसगिक है किन्तु दुर्भाग्य से स्वाधीनता आन्दोलन की विरासत के रूप में हमने वास्तविक धर्म निरपेक्षता के [illegible]

अपने देश में धर्म निरपेक्ष राज्य के स्थान में सर्वधर्म सापेक्ष के कहीं अधिक हानिकर आदर्श को स्वीकार कर लिया है परिणामस्वरूप जहाँ हम इस्लामी देशों जैसे एक ही धर्म पर आधारित राज्य के लाभों से वंचित हो गये हैं, वहीं अनेक धर्मों की अनेक धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों और अंध विश्वासों के भी शिकार हो गये हैं जिसका विवेचन इस पुस्तक में कई स्थानों पर किया गया है। इस तथाकथित धर्मनिरपेक्षता का ही परिणाम है कि तंत्र-मंत्र, फलित ज्योतिष, शुभ मूहूर्त और देवी देवताओं की अनेक कृत विकृत मूर्तियों की पूजा से जुड़े जिन धार्मिक अंधविश्वासों तथा जातपाँत, छुआछूत, बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों को एक समय राष्ट्र और स्वराज्य की प्राप्ति में बाधक समझा जाता था, आज इस आन्दोलन के प्रणेता आर्य समाज के लिये भी इन क्षेत्रों में कार्य करना सर्वधर्म सम्भाव के प्रतिकूल समझा जाता है और परिणाम स्वरूप न केवल हिन्दू राजनेता बल्कि स्वयं आर्य समाज के कार्यकर्ता तक इस दिशा में सर्वथा उदासीन हो गये हैं।

———

हिन्दू बनाम हिन्दू धर्म

प्राय: यह सर्वसम्मत विचार है कि हिन्दू शब्द का भौगोलिक आधार है। उसका उपयोग इस देश के सब निवासियों के लिए किया जाता था और इसीलिए इस देश का नाम हिन्दुस्तान अर्थात् हिन्दुओं का स्थान प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दू या तो धर्मवाचक शब्द नहीं है और यदि है, तो केवल उन लोगों के धर्म का पर्यायवाची है जिन्हें पौराणिक हिन्दू अथवा सनातनी कहा जाता है। न्यायालय के कुछ निर्णयों मे भी यह बात स्वीकार की गई है की कुछ लोग केवल ऐतिहासिक और सामाजिक दृष्टि से हिन्दू होने पर भी उपर्युक्त हिन्दू धर्म के अनुयायी नहीं हैं और इस प्रकार उनका धर्म बहुमत के पौराणिक या सनातनी हिन्दुओं से भिन्न है। उदाहरण के लिए सिख, जैन, बौद्ध तथा आर्य समाजी धार्मिक अर्थ में हिन्दू नहीं है यद्यपि व्यापक अर्थ में वे हिन्दुओं में सम्मिलित समझे जाते हैं।

हिन्दू का अर्थ :

डॉ. सर. राधाकृष्णन् ने 1957 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'दी हिन्दू व्यू आफ लाइफ' के पृष्ठ 12 पर लिखा है कि प्रारम्भ में हिन्दू शब्द' का धार्मिक नहीं अपितु भौगोलिक अर्थ रहा है। एक निश्चित भू-भाग में रहने वाले निवासियों के लिये उसका उपयोग किया जाता था। सर सैय्यद अहमद की शाह मौहम्मद द्वारा 1969 में लिखी गई जीवनी के पृष्ठ 246-47 के अनुसार सर सैय्यद कहते हैं कि—"कौम से मेरा तात्पर्य हिन्दू और मुसलमान दोनों से है और इसी अर्थ में मैं उसका उपयोग करता हूँ। मेरे लिए इस बात का कोई महत्व नहीं है कि कौन किस धर्म को मानता है,

क्योंकि उसका प्रकट रूप में बहुत कम परिचय मिलता है, लेकिन जो कुछ हम देखते हैं वह यह हैं कि चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, वह सब एक ही देश में रहते हैं और एक ही राजा की प्रजा हैं। हमारे सुख-दुःख और लाभ-हानि भी एक ही है, अकाल के समय में हम दोनों एक जैसे ही शिकार होते हैं और भी कुछ तथ्य हैं जिनके आधार पर इन दोनों कौमों को जो "भारत में रहती हैं मैं हिन्दू कहता हूँ अर्थात् हिन्दुस्तान में रहने वाले लोग।" देहली विश्वविद्यालय द्वारा 1966 में लाला लाजपत राय के लेखों और भाषणों का संग्रह प्रकाशित हुआ है उसके दूसरे भाग के पृष्ठ 244 पर इस सम्बन्ध में लालाजी का यह मन्तव्य व्यक्त किया गया है कि—"भारत के बाहर इण्डियन अर्थात् भारतीयों को हिन्दू कहा जाता है—मिस्र एक मुस्लिम देश है और वहाँ की सबसे प्रसिद्ध मुस्लिम यूनिवर्सिटी अल अजहर के परिसर में भारत के मुसलमानों को हिन्दू शब्द से सम्बोधित किया जाता है और जिस छात्रावास में वे रहते हैं उसे हिन्दू विभाग कहा जाता है। उत्तर और दक्षिणी अमेरिका दोनों में प्रत्येक भारतीय को हिन्दू कहते हैं। यदि हम भी इस अर्थ में हिन्दू शब्द को स्वीकार कर लें तो वह एक आदर्श स्थिति हो सकती है और इस प्रकार इस देश में रहने वाले गैर हिन्दू भी यदि अपने धार्मिक विचार छोड़े बिना तथा अपने रीति-रिवाजों को त्यागे बिना इस नाम को स्वीकार कर लें तो हमारे अपने मतभेद दूर हो सकते हैं। इस देश का नाम हिन्दुस्तान है इसलिए जो उसे अपनी मातृ-भूमि स्वीकार करते हैं उन्हें हिन्दू कहना और मानना चाहिये। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हो रहा है। इस देश में बहुत से ऐसे समूह है जिनका यही देश घर है किन्तु वे अपने आप को हिन्दू कहे जाने का विरोध करते हैं और इस भेद को बनाये रखने के लिये हमारी सरकार (तत्कालीन अंग्रेजी सरकार) ने धारासभाओं के चुनाव और सरकारी नौकरियों तक में इस देश के लोगों को मुस्लिम और गैर मुस्लिम इन दो वर्गों में बाँट दिया है।"

हिन्दू धर्म क्या है ? :

हिन्दू शब्द के समान हिन्दूयिज्म या हिन्दू धर्म की परिभाषा भी विवादास्पद है। वस्तुत: संस्कृत और हिन्दी में धर्म के अनेक व्यापक अर्थ प्रचलित हैं जो मजहब या रिलीजन के पर्यायवाची नहीं है। किन्तु हम हिन्दू धर्म का भी एक आधुनिक मजहब या रिलीजन के अर्थ में उपयोग करते हैं जो सही नहीं है क्योंकि इस अर्थ में हिन्दू इस बात को अस्वीकार ही नहीं करते कि उनका कोई समान संगठित धर्म है इस विभिन्नता को हिन्दू धर्म की एक विशेषता मानकर उस पर अभिमान करते हैं। उनके अनुसार हिन्दू धर्म एक सर्वग्राही और उदार जीवन दर्शन है जो सब धर्मों और विश्वासों के प्रति समान आदर रखना है। उनके अनुसार सब धर्म समान है और इसीलिए हिन्दू धर्म का कोई संगठित पृथक् स्वरूप नहीं है जैसा अन्य धर्मों का है। स्वयं महात्मा गाँधी ने यह प्रश्न उठाया था कि हिन्दू धर्म क्या है ?और उसका उत्तर देते हुवे लिखा कि हिन्दू धर्म का यह एक सौभाग्य या दुर्भाग्य समझना चाहिये कि वह कोई संगठित धर्म नहीं है। (देखें नवजीवन प्रेस अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित गाँधीजी द्वारा लिखित पुस्तक हिन्दू धर्म पृष्ठ 17)। भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और प्रसिद्ध विधिवेत्ता डा. गजेन्द्र गड़कर ने लिखा है कि हिन्दू धर्म की परिभाषा तो दूर उसका विवरण तक करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। हम उसे जीवन की एक शैली से अधिक कुछ नहीं कह सकते। (देखें ए आई. आर. 1966 में प्रकाशित उच्चतम न्यायालय के निर्णय का पृष्ठ 1128) अपनी ऊपर उद्धृत पुस्तक में डॉ. राधाकृष्णन् लिखते हैं कि उसके बहुत से अनुयायियों के लिए हिन्दू धर्म केवल एक नाम है जिसका कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। वास्तव में वह एक विश्वासों का अजायबघर और रीति-रिवाजों की खिचड़ी तथा भौगोलिक नक्शे की अभिव्यक्ति मात्र है। बम्बई के प्रसिद्ध 'इलस्ट्रेटड वीकली' के 11 नवम्बर 1974 तथा

'ओर्गनाइजर' के 28 दिसम्बर 1974 में प्रकाशित अपने लेखों में भारत के पूर्व विदेश मंत्री और जनसंघ तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रमुख नेता और अब भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष अटल बिहारी वाजपेयी कहते हैं कि मुझे यह पूछा जाता है कि मैं हिन्दू क्यों हूँ ? उत्तर में वे कहते हैं कि "नि:सन्देह मैं हिन्दू इसलिए हूँ कि मेरा जन्म हिन्दू परिवार में हुआ है । मुझे हिन्दू होने की खुशी है । किन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि रिलीजन के प्रचलित अर्थ में हिन्दू कोई धर्म नहीं है अपितु जीवन का एक तरीका है ।" स्वयं महात्मा गाँधी ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ 7 पर यह लिखा है कि "हिन्दू धर्म केवल सनातनी हिन्दुओं का धर्म हैं और मैं अपने आपको उसका अनुयायी मानते हुए भी उसकी अनेक बातों की उपेक्षा करता हूँ । मैं अपने आपको सनातनी हिन्दू इसलिए कहता हूँ कि मैं वेद, उपनिषद पुराण तथा अन्य हिन्दू धर्मग्रन्थों में विश्वास करता हूं और इसलिए अवतार और पुनर्जन्म को भी मानता हूं । अपने विशेष अर्थ में वर्णाश्रम धर्म को मानता हूँ अर्थात् उसके वैदिक अर्थ में न कि उसके वर्तमान प्रचलित और विकृत अर्थ में । मैं गौ रक्षा पर भी व्यापक अर्थ में विश्वास करता हूं और मूर्तिपूजा में अविश्वास नहीं करता ।

हिन्दू धर्म की सावरकर की परिभाषा :

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी विचारक और देशभक्त वीर सावरकर ने 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक में इस बारे में बड़े सुन्दर और मौलिक विचार व्यक्त किये हैं । हिन्दू और हिन्दू धर्म का भेद बताते हुए वे पूछते हैं कि हिन्दू कौन है ? और उत्तर में वे कहते हैं "इसका सही अर्थ जानने के लिए हिन्दूइज्म या हिन्दू धर्म की व्याख्या करनी आवश्यक है । किन्तु अनेक इस प्रयत्न में असफल होकर निराशा अनुभव करते हैं और इस प्रकार अनेक समुदायों को या तो वे हिन्दू नहीं मानते या फिर उसके द्वारा हिन्दू धर्म के प्रति विरोध की भावना व्यक्त करते हैं । इनमें सिख, जैन और देव समाजी ही

नहीं हमारे देश प्रेमी और प्रगतिशील आर्य समाजी भी हैं। सावर-कर आगे लिखते हैं कि "हिन्दू धर्म उन सब धार्मिक विश्वासों और भिन्न-भिन्न समुदायों के लिए लागू होना चाहिए था जो अपने को हिन्दू कहते हैं किन्तु साधारणतः यह उसी धर्म का वाचक है जिसके बहुसंख्यक हिन्दू ही अनुयायी हैं। किसी धर्म और जाति का नाम ऐसा होना चाहिए कि जो सबके लिए नहीं तो अधिकांश लोगों की समान विशेषताओं को प्रकट करता हो। ऐसा करना सुविधाजनक भी है किन्तु केवल सुविधाजनक होने के कारण हमें ऐसे किसी शब्द या परिभाषा को स्वीकार नहीं करना चाहिये जो हानिकारक हो और जिसके कारण गलतफहमी या भ्रम उत्पन्न होता हो। इस दृष्टि से हिन्दुओं का बहुमत जिन विशेषताओं के कारण प्रायः एक समझा जाता है उनका आधार स्मृति, श्रुति या पुराण है। इसलिये उसे सनातन धर्म कहना अधिक उपयुक्त है, किन्तु बहुमत के इन हिन्दुओं के अतिरिक्त दूसरे हिन्दू भी हैं जो या तो पूर्ण रूप में पुराणों, स्मृतियों और यहाँ तक कि वेदों तक को नहीं मानते। इसलिए यदि हिन्दुओं के धर्म का अर्थ केवल बहुमत के धर्म से लिया जाये और इन्हें ही हिन्दू कहा जाय तो दूसरे उदार और प्रगतिशील हिन्दू इसको स्वीकार नहीं करगे और बहुमत के इस दावे को अनुचित मानगे। इसलिए जो हिन्दू अल्पमत में हैं वे हिन्दू धर्म को भी स्वीकार नहीं करगे और बहुमत के इस दावे को अनुाचत मानगे कि वे भी हिन्दू हैं इसलिए जो हिन्दू अल्पमत में हैं उनक धर्मों को भी स्वीकार करके हमें उनका पृथक् धामिक अस्तित्व स्वीकार करना होगा, अन्यथा केवल पौराणिक और कट्टर हिन्दुओं को ही हिन्दू माना जाय तो यह सुधारवादी हिन्दू व्यापक हिन्दुत्व की सीमा स पृथक् समझे जायेगे।

इस प्रकार सावरकर जहां यह स्वीकार करते हैं कि बहुमल के हिन्दुओं के धर्म से अल्पमत वाले अनेक हिन्दुओं का धर्म पृथक् और भिन्न है वहाँ वे यह भी चेतावनी देते हैं कि "हिन्दु धर्म जो बहुमत

के हिन्दुओं का धर्म है उसकी अन्य सब हिन्दुओं पर थोपने का हमें गलत प्रयत्न नहीं करना चाहिए अन्यथा हिन्दुओं में परस्पर कटुता उत्पन्न होगी। यदि हिंन्दू धर्म समस्त हिन्दुओं के धर्म का द्योतक नहीं हो सकता तो हमें ऐसा आग्रह नहीं करना चाहिए और यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि बहुमत के हिन्दुओं के धर्म का नाम सनातन धर्म अर्थात् श्रुति, स्मृति, पुराणोक्त धर्म है और बाकी के हिन्दुओं के अपने-अपने धर्म है जिन्हें सिख धर्म, आर्य धर्म, जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के नाम से सम्बोधित किया जाता है।"

आर्य समाजी हिन्दू धर्म में नहीं आते :

लोकमान्य तिलक न केवल हिन्दू धर्म के एक निष्ठावान अनुयायी ही थे अपितु वे हिन्दू धर्म शास्त्र और संस्कृत के भी विद्वान् थे। न्यायमूर्ति गजेन्द्रगड़कर ने हिन्दू धर्म की उनकी व्याख्या इस प्रकार उद्धृत की है—

"प्रामान्यबुद्धिवेदेषु साधनानामनेकता।
उपास्यानामानियमः एतद् धर्मस्य लक्षणम्॥"

तिलक द्वारा रचित संस्कृत में हिन्दू धर्म की इस परिभाषा के अनुसार वेदों के प्रति प्रामाणिक आदर भाव, उपासना की विभिन्नता तथा उपास्य देवों की अनेकता यह हिन्दू धर्म के लक्षण है।

प्रश्न यह है कि क्या आर्य समाज इस परिभाषा के अनुसार हिन्दू धर्म में आ सकता है? स्पष्ट है कि तिलक की इस परिभाषा और उसकी न्यायमूर्ति गजेन्द्रगड़कर द्वारा की गई व्याख्या के अनुसार आर्य समाज हिन्दू धर्म में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। स्वयं सावरकर ने लोकमान्य तिलक की इस व्याख्या का विवेचन करते हुए 'हिन्दुत्व' के पृष्ठ 107 पर लिखा है कि "तिलक की यह परिभाषा सनातन धर्म की व्याख्या हैं जो उन्होंने चित्रमय जगत्, (सचित्र मराठी साप्ताहिक) में अपने विद्वतापूर्ण लेख में की है। लोकमान्य तिलक ने उसमें स्वयं स्वीकार किया है कि इस परिभाषा

के अनुसार आर्य समाजी हिन्दू धर्म का अंग नहीं हो सकते यद्यपि वे राष्ट्रीय दृष्टि से भले ही हिन्दू हो।" यह परिभाषा यद्यपि अपने आप में बड़ी अच्छी है किन्तु वह न हिन्दुत्व की परिभाषा है और न ही हिन्दू धर्म की। वह केवल सनातन धर्म अर्थात् श्रुति, स्मृति, पुराणोक्त सम्प्रदाय की परिभाषा मात्र है।" लोकमान्य तिलक की इस परिभाषा के सम्बन्ध में ए. वी. कुलकर्णी द्वारा लिखी "तिलकाची गेली 8 वर्णे" नामक मराठी पुस्तक के पृष्ठ 220 के अनुसार स्वयं तिलक कहते हैं कि "मेरी इस परिभाषा का उद्देश्य यह है कि उसमें हिन्दूधर्म की समस्त जातियों, वर्णों और सम्प्रदायों का समावेश किया जा सके तथा अन्य धर्मों को उससे पृथक् समझा जा सके। दूसरे शब्दों में यह परिभाषा तर्क शास्त्र के अनुसार न अधिक संकीर्ण होनी चाहिये और न ही अधिक व्यापक।" इस्लाम और ईसाई धर्म से हिन्दू धर्म की भिन्नता दर्शाते हुए तिलक लिखते हैं कि "इन धर्मों के विपरीत हम यह मानते हैं कि ईश्वर के समय-समय पर अवतार प्रकट हुए हैं और आगे भी होंगे यद्यपि ईश्वर को हम एक मानते हैं किन्तु हम यह स्वीकार नहीं करते कि पृथ्वी पर उसका एक ही तथा अन्तिम अवतार हुआ है। जिस प्रकार उपासना के अनेक तरीके हैं उसी प्रकार उपास्य देवता भी अनेक हैं ऐसी हिन्दू धर्म की मान्यता है। अन्य धर्म के समान हिन्दुओं का कोई निश्चित देवता नहीं है। हम यह नहीं मानते कि केवल विष्णु या शिव की उपासना से ही मुक्ति हो सकती है। हिन्दू धर्म में शैव, वैष्णव, गणपत्य आदि अनेक मत हैं जो अपने-अपने देवताओं को श्रेष्ठ मानते हैं और उनकी उपासना के लिए ऐसी मान्यता जरूरी है।"

सनातनियों द्वारा भी विरोध :

सनातन धर्म के अन्य प्रमुख व्यक्तियों के भी आर्य समाज के बारे में ऐसे ही विचार हैं। वे उसे एक सर्वथा नवीन धर्म मानते हैं जो प्रचलित हिन्दू धर्म के विरुद्ध है। पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित तथा व्यंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा 1905 में 'दयानन्द

तिमिर भास्कर' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की गई है। जैसा पुस्तक के नाम से स्पष्ट है कि उसमें स्वामी दयानन्द द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश का खण्डन करते हुए लिखा है कि दयानन्द ने जो अन्धकार अर्थात् तिमिर फैलाया उसे दूर करने के लिए यह भाष्कर यानी सूर्य अर्थात् पुस्तक लिखी गई है। इस पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि स्वामी दयानन्द का यह कथन कि उन्होंने किसी नवीन धर्म की स्थापना नहीं की, भ्रमपूर्ण है। स्वामी जी की इस घोषणा का उपहास करते हुए ज्वालाप्रसाद मिश्र लिखते हैं कि— "कैसी विचित्र बात है कि एक नवीन धर्म की स्थापना करने के बाद भी इस बात से इन्कार किया जाता है। पुरानी मान्यताओं को तिलांजलि देकर नई प्रारम्भ की गई, शास्त्रों को पूर्णतया नष्ट करने का प्रयत्न किया गया, प्रतिमा पूजा, श्राद्ध, तर्पण, मन्त्र, जप तप सबको असत्य घोषित कर दिया गया। नियोग जैसे अनाचार का समर्थन किया गया। सब जगह आर्य समाज की शाखायें खोल दी गई और ब्राह्मणों को पोप बताया गया। वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था नष्ट की गई। शूद्रों को वेद पढ़ने का रास्ता खोल दिया गया। वेदों का अपना पृथक् भाष्य किया गया। इस प्रकार प्राचीन प्रथाओं और मान्यताओं को पूरी तरह उखाड़ फेंकने के लिए कोई कसर उठाकर नहीं रखी गई और इस उद्देश्य से 'सत्यार्थ प्रकाश', 'ऋग्वेदभाष्य भूमिका' आदि अन्य ग्रन्थ लिखे गये। यह भी घोषित कर दिया गया कि ईश्वर पापों को क्षमा नहीं कर सकता। उसके नाम का जप करने से कोई लाभ नहीं है। जीव, मुक्ति से वापस लौटकर आता है आदि अनेक अपने सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिये गये और इस पर भी दयानन्द का कहना हैं कि मैंने किसी नवीन मत की स्थापना नहीं की।"

आगे 'दयानन्द तिमिर भास्कर' के लेखक पृष्ठ 18 पर पूछते हैं कि "क्या इस प्रकार के भूठ की कोई सीमा है? नवीन धर्म को स्थापित करने के लिए दयानन्द और क्या कर सकते थे? उन्होंने

अपने सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में अपनी मान्यताओं और मन्तव्यों को शामिल कर दिया है। इसलिए यह पुस्तक अर्थात् तिमिर भास्कर जो सत्यार्थ प्रकाश की पोल खोलने के लिये लिखी गई है, इन मन्तव्यों और विश्वासों का भी खण्डन करती है। परिणामस्वरूप इन मान्यताओं का भी आधार नष्ट हो जाता है क्योंकि न वे वेदों के आधार पर हैं और न ही बुद्धिमान् विचारकों को स्वीकार हो सकते हैं। अपने स्वयं के मन्तव्यों की स्वयं घोषणा करना ऐसी है जैसे अपने पुत्र को स्वयं राजा घोषित करना। यह सब निरर्थक है, इसका कोई लाभ नहीं है। यह सब लोगों को गुमराह करने के लिये लिखा गया है।"

मालवीय जी :

पंडित मदनमोहन मालवीय, जिन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की और जो सनातन धर्म के एक प्रमुख नेता थे, उनकी सम्मति में भी धार्मिक दृष्टि से आर्यसमाज सनातन हिन्दू की परिभाषा में नहीं आता है। पंडित उमापति द्विवेदी द्वारा रचित "सनातन धर्मोद्धार" नामक पुस्तक जो मालवीय जी की स्वीकृति से प्रकाशित की गई, उसमें भी हिन्दू धर्म की जो विस्तृत मान्यतायें दी गई हैं वे स्पष्ट रूप से आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विपरीत हैं। इतना ही नहीं स्वयं मालवीयजी ने अपनी भूमिका में लिखा है कि सनातन धर्म के सिद्धान्तों का यह संग्रह उन सब सम्प्रदायों के लिये मान्य और स्वीकार है जो सनातन धर्म की परिभाषा में आते हैं और इस प्रकार यह पुस्तक हमारे नवयुवकों के लिये धार्मिक शिक्षा देने और हिन्दू धर्म का प्रचार करने के कार्य में उपयोगी सिद्ध होगी। ग्रन्थ के लेखक ने स्पष्ट रूप से आर्य समाज और उसके सिद्धान्तों का खण्डन और उसके संस्थापक ऋषि दयानन्द की कड़े शब्दों में निन्दा की है। उन्हें 'वेदविनाशक' तक कहा है और लिखा है कि स्वामीजी ने न केवल वेदों का ही विनाश किया अपितु धर्म के नाम पर अनेक और कांटे बोये हैं। धर्मोद्धार नामक अध्याय में स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों और 'सत्यार्थ प्रकाश' की विस्तार से समा-

लोचना की गई है। वेदविनाशक (अर्थात् स्वामी दयानन्द) और उनके समालोचक (अर्थात् लेखक पंडित उमापति द्विवेदी) के बीच एक काल्पनिक संवाद के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि स्वामी दयानन्द ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध जो तर्क दिये हैं वे वेद तथा अन्य हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध हैं। एक स्थान पर द्विवेदीजी लिखते हैं कि "ईश्वर की मूर्तियाँ केवल पत्थर या मिट्टी मात्र हैं और पवित्र गंगा जल केवल पानी या जल है यह बात केवल मूर्ख व्यक्ति ही कह सकता है।"

देहली उच्च न्यायालय का निर्णय :

देहली हाई कोर्ट ने आर्य समाज को पृथक धार्मिक संगठन न मानकर जहाँ एक कानूनी और संवैधानिक भूल की है (जिसके विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में आर्य समाज की अपील पर न्यायालय ने अपने अंतरिम आदेश मे आर्यसमाज को धार्मिक अल्पमत स्वीकार किया है) वहाँ दूसरी ओर देहली हाई कोर्ट के न्यायाधीशों को विवश होकर यह स्वीकार करना पड़ा कि प्रत्येक हिन्दू धार्मिक दृष्टि से भी हिन्दू धर्म का अनुयायी हो यह आवश्यक नहीं है। उन्होंने हिन्दू के दो अर्थ किये हैं : एक जो केवल सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू हैं और दूसरे वे जो धार्मिक दृष्टि से हिन्दू हैं। जैन, बौद्ध और सिख आदि जो केवल सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू हैं अथवा केवल हिन्दू व्यक्ति गत कानून अर्थात् हिन्दू कोड बिल के अनुसार हिन्दू हैं उन्हें न्यायालय ने हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं माना है।

इसीलिए यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि देहली न्यायालय ने हिन्दू के दो अर्थ स्वीकार करते हुए जैन बौद्ध और सिखों के विपरीत धार्मिक दृष्टि से केवल आर्य समाज को ही हिन्दू धर्म का एक सुधरा हुआ सम्प्रदाय किस प्रकार घोषित किया है? जबकि आर्य समाज के पक्ष में यह सिद्ध करने के कहीं अधिक सबल तर्क है कि सनातनी या पौराणिक हिन्दू धर्म का अंग या सम्प्रदाय नहीं हो सकता जैसा हम पूर्व अध्याय में स्पष्ट कर चुके हैं।

आर्य समाज का हिन्दूकरण

(लाला लाजपतराय की चेतावनी)

ऋषि दयानन्द ने जिस सार्वभौम वैदिक धर्म की पुनः स्थापना का आन्दोलन प्रारम्भ किया था, उसकी एक विशेषता यह थी कि उसे उन्होंने एक प्रचारक धर्म अर्थात् Proselytizing Relegion का रूप देने का प्रयत्न किया। जीवन भर वे इसी वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए संघर्ष करते रहे। उपदेश, शास्त्रार्थ, साहित्य सृजन तथा धर्म प्रचार के प्रायः सब साधनों का उन्होंने बड़े प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया। आर्य समाज की स्थापना के पीछे भी उनका यही उद्देश्य था और इसीलिये उन्होंने आर्य समाज के तीसरे नियम में आदेश दिया है कि वेद को न केवल पढ़ना बल्कि उसे पढ़ाना और सुनना-सुनना भी सब आर्यों का परम धर्म है।

अपने प्रारम्भिक युग में इसलिये आर्य समाज और उसकी शिक्षण संस्थाएँ संगठित रूप से धर्म प्रचार का कार्य करती थी। प्रतिनिधि सभाओं और यहाँ तक कि सार्वदेशिक तथा परोपकारिणी सभा का भी यही मुख्य कार्य था। संगठित प्रचार के परिणामस्वरूप ही आर्य समाज को न केवल स्वदेशी बल्कि विदेशी विद्वानों ने 19 वीं सदी का एक अत्यन्त प्रभावशाली और क्रान्तिकारी आन्दोलन कहकर उसके भविष्य के संबंध में अनेक आशाएँ और अपेक्षाएँ व्यक्त की थी।

वर्तमान खेद जनक स्थिति :

किन्तु अपने 120 वर्ष के अल्पकाल में ही आर्य समाज ने अपनी प्रारम्भिक तेजस्विता और प्रभाव को इतना शिथिल बना दिया है कि उसके भविष्य के बारे में की जाने वाली आशाओं की पूर्ति तो दूर आज स्वयं उसके वर्तमान के संबंध में भी निराशा उत्पन्न होने लगी है।

हिन्दू विचारधारा का दुष्प्रभाव :

आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में अनेक विश्लेषण किये गए हैं और किये जा रहे हैं उन सबका उल्लेख करना यहाँ अभिप्रेत नहीं है, किन्तु आर्य समाज की वर्तमान स्थिति का एक मुख्य कारण यह है कि अब आर्य समाज को प्रायः वर्तमान हिन्दू धर्म का ही एक सुधरा हुआ सम्प्रदाय माना जाने लगा है। स्वयं आर्य समाज का नेतृत्व भी इस दुःखद परिवर्तन के प्रति सर्वथा उदासीन है।

जिसे हम हिन्दू धर्म कहते हैं उनके अनुयायी तथा यहाँ तक कि प्रशंसक और समर्थक भी यह मानते हैं कि हिन्दू धर्म विभिन्नताओं में एकता का उदाहरण है। अनेक परस्पर विरोधी धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, देवी-देवताओं पर आधारित हिन्दू धर्म यह दावा तक नहीं कर सकता कि अन्य संगठित और प्रचारात्मक धर्मों की तुलना में उसमें कोई ऐसी विशेषताएं हैं, जिससे आकर्षित होकर अन्य धर्मों के अनुयायी उसे स्वीकार करें। स्वयं महात्मा गांधी जैसे हिन्दू धर्म के आधुनिक प्रशंसक और समर्थक यह कहते रहे हैं कि हिन्दू धर्म एक प्रचारक धर्म नहीं हैं और न ही हो सकता है, क्योंकि वह अन्य धर्मों को समान ही नहीं सत्य भी मानता है। इसलिए अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपने धर्म में दीक्षित करने के उद्देश्य से उसके अनुयायियों को प्रचार करने की न आवश्यकता है और न उसकी कोई उपयोगिता। यही कारण है कि अफ्रीका तथा मध्य एशिया के मूल निवासी केवल ईसाई और मुसलमाल ही बनते हैं हिन्दू नहीं।

आर्य समाज हिन्दू धर्म सम्प्रदाय नहीं है :

ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू धर्म और समाज के प्रति अपने विशेष संबंधों के कारण स्वयं आर्य समाज भी इस दृष्टिकोण का शिकार होता जा रहा है। एक समय था कि ऋषि दयानन्द के आदेशानुसार हम अपने को केवल आर्य कहने का आग्रह करते थे।

अब अधिकांश आर्य समाज के सदस्यों को इस नाम से कोई विशेष लगाव या मोह नहीं रहा। नाम का ही प्रश्न होता तो विशेष चिन्ता की बात नहीं थी किन्तु नाम के साथ हमने धार्मिक, सामाजिक सब क्षेत्रों में हिन्दू धर्म की उन विशेष विचारधाराओं को भी स्वीकार कर लिया है जिनका ऋषि दयानन्द ने निषेध किया था और वह भी इसलिये कि स्वयं हिन्दू समाज के ह्रास और पतन के लिए भी धर्म और समाज के नाम पर प्रचलित यह कुरीतियाँ और अन्धविश्वास मुख्यतः उत्तरदायी थे। दूसरे शब्दों में स्वयं हिन्दुओं के पुनर्जीवन के लिये उनका आर्य जैसा नवीन नामकरण और उसके अनुरूप उनके धार्मिक, सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन, ऋषि दयानन्द आवश्यक समझते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आर्य समाज के वे लोग जो अब भी अपने को हिन्दुओं का रक्षक और समर्थक समझकर उनमें विलीन रहना चाहते हैं वे भी वास्तव में स्वयं अपने इस लक्ष्य के विपरीत कार्य कर रहे हैं। हिन्दुओं के गत सदियों के इतिहास से यह बात स्पष्ट है जिन मूर्तिपूजा आदि धार्मिक अंधविश्वासों तथा जाति-पाँति, छुआछूत जैसी विभागक सामाजिक कुरीतियों के कारण उनका पतन हुआ उसका निराकरण किये बिना एक नवीन हिन्दू राष्ट्र की कल्पना असम्भव है। इसलिये स्वयं हिन्दू समाज के हित में भी यह आवश्यक है कि आर्य समाज अपने प्रारम्भिक वास्तविक स्वरूप और पृथ अस्तित्व को सुरक्षित रखकर हिन्दू समाज को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करे, जैसा एक डाक्टर अपने को रोगी से पृथक् रखकर उसका उपचार करता है। अन्यथा वह हिन्दू धर्म का एक सुधारक सम्प्रदाय बन कर रह जायगा।

लाला लाजपतराय की चेतावनी :

हिन्दू एकता और संगठन के प्रबल समर्थक और आर्य समाज के मूर्धन्य नेता तथा विचारक स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने हिन्दुओं के साथ आर्य समाज का क्या सम्बन्ध हो इसका विवेचन करते हुए

अपनी प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक "आर्यसमाज" के 1967 के संस्करण के पृष्ठ 185 पर लिखा है "The Arya Samaj can have no loftier or nobler ambition than that its entire teaching or at least its spirit may be a adopted by Hinduism as it own but". However we should not like the Arya Samaj to be lost in the vast sea of Hinduism. We should like it to exist for Hinduism first and for the rest of the world afterwards but we should deplore its being merged in Hinduism or any other ism. Its independence is the charter of its existence and of its usefulness. Its members have no hesitation and will never have any, in staking their all for the defence of Hindu community but the strength of an advocate lies in his independence inspite of identifing himself with the causeof his client."

अर्थात् आर्य समाज के लिये इससे अधिक अन्य कोई महत्वाकांक्षा नहीं हो सकती कि हिन्दू धर्म आर्य समाज के समस्त सिद्धान्तों को या कम से कम उनकी भावनाओं को अपनी स्वयं की मानकर स्वीकार कर ले, किन्तु हम यह कभी नहीं चाहेंगे कि आर्य समाज हिन्दू धर्म के विशाल समुद्र में खो जाये। आर्य समाज का अस्तित्व सबसे पहले हिन्दुओं के लिये और बाद में संसार के लिये बना रहे ऐसा हम चाहते हैं किन्तु हमें खेद होगा यदि वो हिन्दू धर्म या अन्य किसी में विलीन हो जाय। आर्य समाज की स्वतन्त्रता ही उसके अस्तित्व और उपयोगिता का आधार है। उसके सदस्य हिन्दू समाज की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व दाँव पर लगाने के लिये कभी संकोच नहीं करेंगे किन्तु यह स्पष्ट है कि अपने मुवक्किल के हित को अपना हित मानने वाले वकील की शक्ति भी उसके पृथक अस्तित्व में निहित होती है।"

आर्य समाज और हिन्दू :

आर्य समाज का हिन्दू धर्म या हिन्दू समाज से क्या सम्बन्ध हो इसका इससे अधिक सुन्दर और विचार पूर्ण विवेचन और नहीं

हो सकता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जो हिन्दुत्वनिष्ठ व्यक्ति आर्य-समाज के संगठन और नेतृत्व से जुड़े हुए हैं उन्हें भी यह स्वीकार करना होगा कि आर्य समाज का पृथक् अस्तित्व और पहचान न केवल आर्य समाज के अपितु स्वयं उनके स्वप्न के हिन्दू संगठन या हिन्दू राष्ट्र की कल्पना को साकार करने के लिये भी आवश्यक है।

आर्य समाज का भविष्य :

आर्य समाज की वर्तमान शिथिलता का मेरी दृष्टि में यही सबसे बड़ा कारण है कि हम लाला लाजपतराय द्वारा की गई उपर्युक्त भविष्यवाणी और चेतावनी की सर्वथा उपेक्षा कर रहे हैं।

स्वर्गीय लाला लाजपतराय की जिस चेतावनी की ओर ऊपर ध्यान आकर्षित किया है, उसमें उन्होंने आर्य समाज का हिन्दू समर्थक और हिन्दू रक्षक होने की नीति का अनुमोदन करते हुए यह आशंका व्यक्त की है कि यदि हिन्दुओं के प्रति अपनी सद्भावना के वशीभूत होकर आर्यसमाज ने अपने आपको हिन्दू धर्म के विशाल समुद्र में विलीन होने से न बचाया तो न उसका अस्तित्व सुरक्षित रहेगा और न ही उसकी उपयोगिता। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि—"While in this increasing friendliness with orthodox Hinduism lies the strength of the Arya Samaj but there in also lurks the danger of a deterioration of standards of reform." अर्थात् जहाँ हिन्दुओं के साथ बढ़ती हुई मित्रता आर्यसमाज के प्रभाव का द्योतक है, वहीं उसमें यह खतरा भी निहित है कि उसके कारण आर्यसमाज के सुधार की गति मन्द पड़ सकती है। लालाजी की यह भविष्यवाणी कितनी सही सिद्ध हो रही है, यह हम आर्य समाज के धार्मिक और सामाजिक सुधार के कार्यक्रम की वर्तमान शिथिल गति से देख सकते हैं। राजनीतिक और सामाजिक जिन कारणों से आर्य समाज अब केवल एक हिन्दू सुधार आन्दोलन समझा जाने लगा है उन्हीं कारणों के परिणामस्वरूप आर्यसमाज हिन्दू धर्म के मूर्ति-पूजा आदि

धार्मिक अन्धविश्वासों तथा जाति-पाँति आदि सामाजिक कुरीतियों का उतनी तीव्र दृढ़ता और कारगर ढंग से निषेध नहीं करता, जितना वह अपने प्रारम्भिक स्वर्ण युग में करता था। यदि यह कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति न होगी कि अपने इन प्रारम्भिक क्रान्तिकारी सुधारों के सम्बन्ध में भी अब उसने कट्टरपंथी हिन्दुओं से समझौता कर लिया है और वह भी न केवल अपनी राजनैतिक स्वार्थ सिद्धी के लिए किया जा रहा है बल्कि इसलिये भी कि इन तथा ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित अन्य क्रान्तिकारी मान्यताओं के सम्बन्ध में स्वयं उसके अपने अनुयायियों का विश्वास और निष्ठा कमजोर होती जा रही है।

वैदिक और हिन्दू धर्म :

जैसा हमने प्रारम्भ में निवेदन किया था कि ऋषि दयानन्द अपनी मान्यता के वैदिक धर्म को एक सार्वभौम प्रचारक धर्म बनाना चाहते थे जिसे हिन्दू धर्म कहा जाता है, उसमें और आर्यसमाज के वैदिक धर्म में यही एक प्रमुख अन्तर है कि जहाँ हिन्दू धर्म अपनी तथाकथित उदारता और सहिष्णुता के आधार पर सब धर्मों की समानता पर विश्वास करता है, वहाँ आर्यसमाज इस्लाम और ईसाई धर्मों के समान अपनी धार्मिक मान्यताओं का प्रचार और प्रसार करने में विश्वास रखता है और परिणामस्वरूप अन्य धर्मों के अनुयायियों को अपने में दीक्षित करने का प्रयत्न करता है। महात्मा गाँधी तक आर्यसमाज के शुद्धी आन्दोलन को हिन्दू धर्म की विशेषता और उदारता के प्रतिकूल समझकर उसका विरोध करते थे। जबकि अनेक समकालीन विदेशी समीक्षक इसे आर्य समाज की हिन्दू धर्म को एक बड़ी देन मानते थे। केनेथ जोन्स ने "आर्य धर्म" नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि –

"He (Swami Dayanand) started the system of 'Shuddhi' by which persons belonging to other religions could find place in and adopt Hinduism. – अर्थात् स्वामी दयानन्द ने

शुद्धि की व्यवस्था प्रारम्भ की जिसके द्वारा अन्य धर्मों के लोग हिन्दू धर्म में आकर उसे अपना धर्म स्वीकार कर लें। आगे पृष्ठ 129 पर पुनः लेखक लिखता है कि— "To Samajists Shuddhi offered the basis for innovation which would in time, transform Hinduism into a conversion religion equal institutionally to its competitors the prophetic faiths of Islam, Sikhism and Christianity". अर्थात् आर्य समाजियों के लिए शुद्धि एक ऐसी नवीनता का आधार बन गया जिसके द्वारा कालान्तर में हिन्दू धर्म भी एक ऐसा धर्मान्तरण स्वीकार करने वाला धर्म बन जाय जैसे उसके प्रतिस्पर्धी अन्य इस्लाम, सिख तथा ईसाई धर्म हैं।

शुद्धि आन्दोलन की असफलता :

यह स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म ने अपनी विवशता को अपनी विशेषता मानकर ही धर्मान्तरण के मार्ग को नहीं अपनाया। हिन्दू धर्म की सर्वविदित धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के परिणामस्वरूप दार्शनिक और तात्विक दृष्टि से उसकी तुलना में निर्बल धर्मों के अनुयायी भी हिन्दू धर्म में दीक्षित नहीं होते और जो होते हैं, उन्हें हिन्दू धर्म अपने में आत्मसात नहीं कर पाता। यहाँ तक कि मुस्लिम तथा अंग्रेजी शासन में जो हिन्दू जोर जबरदस्ती या लोभ लालच के कारण अहिन्दू बन गये थे उन्हें भी हिन्दू अपनी जाति-पाँति की कुप्रथा के कारण वापिस नहीं ले सके। आर्य समाज ने भी यह बहुत बड़ी भूल की कि उसने शुद्धि जैसे अपने प्रचार के दूरगामी साधन का उपयोग ईसाई और मुसलमानों को आर्य समाज के वैदिक धर्म में दीक्षित करने के स्थान में उन्हें हिन्दू बनाकर छोड़ दिया। इसी का परिणाम है कि अनेक जन्मजात मुसलमान और ईसाई जो आर्य समाज के माध्यम से शुद्ध किये गये वह भी हिन्दुओं की जाति-पाँति और उसके परिणामस्वरुप होने वाली विवाह आदि सामाजिक समस्याओं के कारण वापिस चले गये और इस प्रकार वह न आर्य बने और न ही हिन्दू। इसका मुख्य कारण भी यही

था कि आर्यों का अपना कोई स्वतंत्र और हिन्दुओं से पृथक् सामाजिक अस्तित्व नहीं बन पाया।

प्रचारक धर्म के लिए यह आवश्यक है कि उसका धार्मिक और सामाजिक संगठन ऐसा हो जिसके कारण अन्य धर्मों के लोग उसके प्रति आकर्षित हो सके और उसमें उनकी उन सब धार्मिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, जिसका हिन्दू धर्म में अभाव है। इस दृष्टि से अपने ऊँचे दार्शनिक विचारों के बावजूद भी हिन्दू धर्म सबसे कमजोर और आकर्षण रहित धर्म है। यही कारण है कि आज शायद ही किसी बाहरी देश में वहाँ के मूल निवासियों ने हिन्दू धर्म को स्वीकार किया हो। इसके विपरीत अफ्रीका जैसे जंगली और पिछड़े समझे जाने वाले विशाल देश के निवासी मुसलमान हैं या ईसाई।

आर्य समाज का प्रचार कार्य :

आर्य समाज अपने जिस धार्मिक और सामाजिक प्रचार कार्य के लिए प्रसिद्ध था, वह गत अनेक वर्षों से या तो सर्वथा निस्तेज हो गया है या बन्द हो गया है। इसके कई कारण है। पहला तो यही कि शनैः शनै उसके हिन्दुकरण के परिणाम स्वरूप उसके प्रचारकों और नेतृत्व में अब इसके प्रति अपेक्षित उत्साह नहीं रहा, यहां तक कि कुछ व्यक्ति अब उसकी आवश्यकता तक अनुभव नहीं करते।

प्रचार के साधन अप्रभावी :

दूसरा कारण यह है कि अपने प्रारम्भिक और उत्कर्ष काल में उसके जो प्रचार के साधन और तरीके थे, वे अब पुराने और अप्रभावी हो गये हैं और उनमें परिस्थितियों और आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन नहीं किया जा रहा है।

धर्म निरपेक्षता का विकृत अर्थ :

स्वाधीनता आन्दोलन काल में राजनैतिक विवशता के कारण महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित हिन्दू मुस्लिम एकता की आवश्यकता को ध्यान में रखकर अहिन्दू धर्मों और विशेषकर इस्लाम

के सम्बन्ध में हमने अपनी मनचाही धारणाएँ और मान्यताएँ गढ़ना शुरू कर दी, जिन्हें न ईसाई और न ही मुसलमान धर्म के अधिकृ प्रवक्ताओं ने कभी स्वीकार किया। उदाहरण के लिए विनोबा भावे ने कुरान का शान्ति और अहिंसा आदि का प्रतिपादन करने के लिये जो भाष्य किया उसका इतना विरोध हुआ कि उसको मुसलमानों द्वारा बहिष्कृत कर दिया गया।

खिलाफ़त :

मैं यह बात केवल इस तथ्य को उजागर करने के लिए कह रहा हूँ कि स्वाधीनता आन्दोलन की इस धरोहर (लीगेसी Legacy) के परिणामस्वरूप स्वाधीन भारत के संविधान में हमने जिन आधारभूत सिद्धान्तों को स्वीकार किया उनमें धर्म निरपेक्षता प्रमुख है किन्तु वह वास्तविक अर्थों में धर्म निरपेक्ष राज्य के स्थान में सर्वधर्म सापेक्ष राज्य के रूप में विकसित होने लगी। धर्म निरपेक्षता एक आधुनिक और पाश्चात्य विचारधारा हैं जो अनेक ऐतिहासिक कारणों के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों में प्रचलित हुई, जिसका वास्तविक अर्थ यह था कि राज्य का कोई अपना सरकारी धर्म नहीं है और न ही धर्म के आधार पर उसके नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य निर्धारित किये जाने चाहिये। इसके विपरीत हमने सब धर्मों की समानता या उनके प्रति आदर की अपनी धर्म निरपेक्षता की विचित्र विचारधारा के आधार पर राज्य की ओर से प्रायः सब धर्मों और विशेषकर संगठित इस्लाम और ईसाई आदि धर्मों को भी राज्य का संरक्षण और प्रोत्साहन देना प्रारम्भ कर दिया। और धर्म निरपेक्ष के स्थान में सर्वधर्म सापेक्ष राज्य बना दिया।

धर्म के नाम पर अन्धविश्वास :

इतना ही नहीं केवल धार्मिक आधार पर संविधान की धारा-30 जैसे विशेष मौलिक अधिकार भी संविधान में सम्मिलित कर दिये। इन सब का परिणाम यह हुआ कि धर्म के नाम पर जो अन्धविश्वास और कुरीतियाँ प्रचलित थी उनका निराकरण तो

दूर समीक्षा तक करना असंवैधानिक और गैर कानूनी समझा जाने लगा।

धार्मिक विचार विनिमय :

आर्य समाज की तत्कालीन प्रचार शैली पर इस विचार-धारा का अत्यन्त प्रतिकूल या दूरगामी परिणाम हुआ। दूसरे शब्दों में उसके द्वारा धार्मिक विषयों पर किये जाने वाले विचार विनिमय तथा शास्त्रार्थ आदि प्रचार के माध्यम आपत्तिजनक समझे जाने लगे। आर्य समाज के प्रारम्भिक युग में और देश की उस समय की परि-स्थिति में न केवल धर्म प्रचार के लिए 'अपितु धार्मिक-दृष्टि से असहाय और असुरक्षित हिन्दुओं की रक्षा के लिए भी प्रायः सर्व प्रचारक धर्मों में प्रचलित इन साधनों का औचित्य और महत्व रहा है किन्तु मैं यहाँ ...इस प्रचार शैली का एतिहासिक औचित्य स्वीकार करते हुए भी वर्तमान स्थिति में उस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं करना चाहता। इसलिए आर्य समाज को भी अपनी पुरानी प्रचार शैली में आवश्यक सुधार करके यथासम्भव उसका आधार मण्डनात्मक करने पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। ईसाई मुसलमान आदि अनेक प्रचारक धर्मों ने भी अब इस आवश्यकता को स्वीकार करके अपने धर्म प्रचार जिन नवीन साधनों को स्वीकार किया है आर्य समाज को भी उनका अनुकरण करना चाहिये।

सामूहिक स्थान में व्यक्तिगत प्रचार :

शास्त्रार्थ आदि के अतिरिक्त आर्य समाज के प्रारम्भिक काल में उसके प्रचार के अन्य साधनों में उत्सव, नगर कीर्तन आदि जैसे सामूहिक साधन भी थे, जिनमें विद्वान् वक्ताओं के अतिरिक्त भजनो-पदेशकों और भजन मण्डलियों का भी विशेष स्थान था। किन्तु गत अनेक वर्षों के अनुभव से यह स्पष्ट है कि अब आर्य समाज के उत्सवों, नगर कीर्तनों तथा भजनोपदेशों में वह आकर्षण नहीं रहा जो पहले था। अजमेर तथा लाहौर जैसे विशाल उत्सवों और

नगर कीर्तनों के लिये प्रसिद्ध समाजों ने भी अपने उत्सव और कीर्तन अब बन्द नहीं तो स्थगित से कर दिये हैं।

सेवा और साहित्य :

धर्मान्तरण के सम्बन्ध में जहाँ हिन्दुओं के दृष्टिकोण के अनुसार उसकी कोई आवश्यकता या औचित्य नहीं है वहीं वहाँ धर्मान्तरण को अपना मुख्य लक्ष्य मानने वाले ईसाई और इस्लाम धर्म के प्रचारक भी अब इस आधुनिक दृष्टिकोण के औचित्य को स्वीकार करने लगे हैं कि किसी व्यक्ति को उसके जन्मजात धर्म को बदलने के लिए जोर जबर्दस्ती जैसे उन पुराने साधनों का वर्तमान परिस्थिति में उपयोग करना उपयुक्त नहीं है जिनका अपने जीवन के प्रारम्भिक और मध्यकाल में वह उपयोग करते थे। उदाहरणार्थ अब इस्लाम का परम्परागत तलवार के जोर पर धर्मान्तरण करना कानूनी अपराध है। इसी प्रकार लोभ लालच या अनुचित प्रलोभन भी कई देशों में अनैतिक ही नहीं, गैर-कानूनी हैं। इतना ही नहीं विज्ञान, राजनीति तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में जहाँ अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता है वहीं अब धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं के क्षेत्र में इस प्रकार के विचार स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हैं। उदाहरण के लिए किसी पैगम्बर, मसीहा और धर्म संस्थापक के व्यक्तिगत जीवन की आलोचना सही होने पर भी इस आधार पर निषिद्ध समझी जाती है कि उसक कारण उनके अनुयायियों की भावनाओं को आघात पहुँचता है।

प्रचार के नवीन साधन :

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में अब धर्म प्रचार के लिए भी प्रायः उन सब नवीन प्रचार साधनों का उपयोग किया जाता है जिनका अन्य क्षेत्रों में उपयोग होने लगा है। उदाहरण के लिए लेख, पुस्तकें और समाचार पत्रों के अतिरिक्त रेडियो, टी. वी. तथा फिल्में भी प्रचार के शक्तिशाली आधुनिक यन्त्र हैं। दुर्भाग्य से आर्य समाज के नेतृत्व

ने धर्म प्रचार के इन नवीन साधनों का लाभ उठाने के लिए कारगर ढंग से अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया। विदेशों में तो टी. वी. तथा रेडियो पर नियमित रूप से इस्लाम और ईसाई धर्मों के प्रचार के लिए समय तथा चैनल निश्चित है। भारत में भी ईसाई धर्म प्रचारक इसका उपयोग करते हैं, सिक्खों की गुरुवाणी का भी रेडियो और दूरदर्शन पर प्रसारण किया जाता है। किन्तु आर्य समाज ने इन दोनों प्रभावशाली साधनों का उपयोग करने का अभी तक प्रयत्न नहीं किया।

व्यक्तिगत सम्पर्क :

जैसा मैंने ऊपर निवेदन किया है कि उत्सव, नगर कीर्तन आदि आर्यसमाज के परम्परागत प्रचार के साधन अब कम उपयोगी हो गये हैं। वस्तुतः उत्सव और जुलूस आदि आर्य समाज के प्रारम्भिक काल के प्रभाव और लोकप्रियता के साधन नहीं अपितु परिणाम और प्रतीक भी थे। किन्तु जैसे-जैसे आर्य समाज का प्रभाव और कार्य क्षेत्र घटता गया वैसे-वैसे उनको प्रदर्शित करने वाले यह साधन भी केवल औपचारिकताएँ रह गयी। दुर्भाग्य से अब भी आर्य समाज के अनेक कर्णधार अपनी निष्क्रियता और असफलता को ढकने के लिए समय-समय पर ऐसे साधनों का आयोजन करके यह अपेक्षा करते हैं कि यह प्रदर्शन जो वास्तव में हमारे कार्य की सफलता के परिणाम होने चाहिये वे ही उसको उत्पन्न करने वाले कारण और साधन बनेंगे।

अधिक प्रभावशाली विकल्प :

इन सामूहिक प्रदर्शनों के स्थान पर अब व्यक्तिगत सम्पर्क कहीं अधिक उपयुक्त और कारगर हो सकता है। उदाहरण के लिए प्रत्येक समाज अपने यहाँ एक ऐसे निष्ठावान विद्वान् को पुरोहित प्रचारक या उपदेशक के रूप में नियुक्त करे, जो प्रत्येक परिवार और विशेषकर आर्यसमाज के सदस्यों के परिवार में एक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार जाकर गृहणी और बच्चों को आर्य समाज के

मन्तव्यों और विचारधाराओं से परिचित कराने का कार्य करें। विशेषकर पर्वों आदि के समय यज्ञ आदि के अवसरों का इस कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है। चलचित्र (फिल्मे) तथा 'केसेट' भी आज के युग में आवश्यक है।

साहित्य वितरण :

व्यक्तिगत सम्पर्क का एक दूसरा कारगर तरीका यह है कि प्रत्येक नगर में विभिन्न क्षेत्रों में कुछ स्वयं-सेवक घर-घर जाकर आर्यसमाज का सरल और संक्षिप्त साहित्य वितरण करें। पंडित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय तथा स्वामी दर्शनानन्द जी और स्वयं आर्यसमाज अजमेर द्वारा लिखित और प्रकाशित तथा उनके अनुरुप अन्य छोटे ट्रेक्ट लाखों करोड़ों की संख्या में प्रकाशित कर उन्हें लागत मूल्य और आवश्यक हो तो निःशुल्क बाँटने की व्यवस्था की जाए। साथ ही कुछ अन्य वैदिक साहित्य के ग्रन्थ प्रत्येक परिवार में जाकर उचित मूल्य पर देने के लिए उपलब्ध किये जायें।

दूरदर्शन पर वेद और उपनिषदों की कथा :

समय-समय पर रेडियो तथा दूरदर्शन पर वेद आदि के पाठ का कार्यक्रम होता है, किन्तु केवल मन्त्र पाठ तथा उनकी दकियानूसी पुरानी व्याख्या से वेद और उपनिषदों के प्रति आदर बढ़ने के स्थान पर श्रोताओं में उनके बारे में भ्रम और अनास्था उत्पन्न होती है। आर्यसमाज के नेतृत्व को प्रयत्न करना चाहिये कि इस प्रकार के कार्यक्रम में उसके विद्वान् भी निमन्त्रित किये जायें। ताकि वे ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित तर्कसंगत अर्थ प्रसारित कर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वेदों का प्रचार और प्रसार कर सकें। वस्तुतः बुद्धिवादी वर्ग इसका स्वागत करेगा, क्योंकि इस प्रकार जिन धार्मिक और सामाजिक अन्धविश्वासों, कुरीतियों के विरुद्ध आज हमारे संविधान और जनमानस में वातावरण है उनका वेद और शास्त्रों के आधार पर भी समर्थन हो सकेगा। यह इसीलिए भी आवश्यक है कि

हमारे देश में प्रचलित छुआछूत, बाल विवाह, नरबलि, जाति-पाँति आदि अनेक कुरीतियों का हिन्दू धर्माचार्य अब भी वेद तथा शास्त्रों का नाम लेकर समर्थन करते हैं। विधवा विवाह तथा स्त्री शिक्षा का विरोध भी वेदों के नाम पर ही किया जाता है।

सहायता और सेवा :

पीड़ित लोगों की सेवा और दु:खी दरिद्रों और रोगियों की सहायता का कार्य जहाँ मानवीय दृष्टि से प्रशंसनीय है, वहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इनका धर्मान्तरण के लिए भी उपयोग प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। ईसाई धर्म के सिद्धान्त और मान्यताएँ कितनी ही तर्क विहीन हों, किन्तु आज समस्त संसार में और विशेषकर पिछड़े दलित और पीड़ित वर्गों में ईसाई धर्म का प्रचार का मुख्य कारण उनके द्वारा संचालित रोगी गृह, नर्सिग होम तथा अन्य सेवा के लिए स्थापित संस्थाएं हैं जिनमें अधिकांश कर्मचारी और विशेषकर नर्सें आदि ईसाई शिक्षण संस्थाओं और अनाथालयों आदि में शिक्षित-दीक्षित महिलाएँ होती हैं। वस्तुत: दु खी, दरिद्र, अपंग, तथा असहाय और रोगी व्यक्तियों की सेवा करना ईसाई धर्म की एक ऐसी विशेषता है जिसके परिणाम-स्वरूप अधिकाँश मिशनरी अपनी धार्मिक निष्ठा से इनमें कार्य करते हैं। यद्यपि उन सब का उद्देश्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में धर्मान्तरण करना होता है। वस्तुत: धर्मान्तरण को भी वे अपने धर्म की एक सेवा या उपकार समझते हैं, क्योंकि ईसाई धर्म की यह मान्यता है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष जन्म से पापी उत्पन्न होता है और उसका कल्याण या उद्धार तब ही हो सकता है जब वह ईसामसीह पर विश्वास करके ईसाई धर्म को स्वीकार करे। अपनी इस मान्यता के कारण ही अनेक ईसाई पादरी और प्रचारक अफ्रीका जैसे जंगली और दरिद्र देशों में अपना जीवन अर्पण करते हैं। अनेक दिक्कतों, कठिनाइयों और बाधाओं को सहन करते हैं। धर्म प्रचार के लिए ऐसी त्याग और बलिदान की भावना किसी अन्य धर्म में नहीं है। आर्य समाज के

प्रारम्भिक काल में पण्डित लेखराम जैसे अनेक धर्म प्रचारक सिर पर कफन बाँधकर जब तक ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों पर प्रचार करते रहे तब तक आर्यसमाज का प्रचार और प्रसार अनेक देशी-विदेशी इतिहासकारों के लिए एक आश्चर्यजनक चमत्कार समझा जाता रहा।

आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाएं :

आर्यसमाज के प्रचार कार्य में उसकी डी.ए.वी. तथा गुरुकुल शिक्षण संस्थाओं का बड़ा योगदान रहा है। आर्यसमाज के अनेक विद्वान् उपदेशक और साहित्यकार इन्हीं शिक्षण संस्थाओं की देन हैं, किन्तुदुर्भाग्य से आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति के साथ उसकी शिक्षण संस्थाओं की भी यह प्रारम्भिक विशेषता प्रायः समाप्त होती जा रही है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज प्रबुद्ध वर्ग और विशेषकर नयी पीढ़ी के युवकों से सम्पर्क करने का आर्यसमाज के पास यही शिक्षण संस्थाएँ एक मात्र साधन रह गयी हैं। यदि हम इसका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं तो यह हमारा और विशेषकर इन संस्थाओं के संचालकों का दोष है। केवल शिक्षा प्रसार करना इन शिक्षण संस्थाओं का कार्य नहीं था। स्वाधीनता के बाद अब यह उत्तरदायित्व हमारी सरकार का है। ऐसी स्थिति में यदि हम इन शिक्षण संस्थाओं का उपयोग धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति के प्रचार और प्रसार करने के लिए न कर सके तो आर्यसमाज के लिए उनपर अपना समय और शक्ति का अपव्यय करने का कोई औचित्य नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि इन संस्थाओं के अध्यापक-अध्यापिकाएँ और विशेषकर उनके प्रधानाध्यापक ऐसे निष्ठावान आर्य समाजी हों, जो इन शिक्षण संस्थाओं की उपर्युक्त विशेषताएँ बनाये रखने में सक्षम और निष्ठावान हो। इन शिक्षण संस्थाओं की विशेषता उनमें नियमित रूप से दी जाने वाली धार्मिक और नैतिक शिक्षा थी। देश के अनेक प्रसिद्ध नेता जो इन शिक्षण संस्थाओं में शिक्षित-दीक्षित हुए हैं वे आर्यसमाजी न होने

पर भी जीवन में अपनी सफलता और उपलब्धियों के लिए इन शिक्षण संस्थाओं के प्रति आज भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। सन् 1971 मे दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर की रजत जयन्ती की अध्यक्षता करते हुए तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री जी. एस. पाठक महोदय ने डी. ए. वी. स्कूल में स्वयं अपने विद्यार्थी जीवन के अनुभव के आधार पर इस तथ्य का उल्लेख किया। यह सही है कि इन शिक्षण संस्थाओं में जो धार्मिक और नैतिक शिक्षा दी जाए उसका वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल पाठ्य विषय और पाठ्यक्रम निर्मित किया जाय और उसके आधार आर्यसमाज के सिद्धांतों और मन्तव्यों का मण्डनात्मक विवेचन होना चाहिये। उदाहरण के लिए आर्यसमाज शिक्षा सभा, अजमेर द्वारा इन संस्थाओं के लिए के. जी. से लेकर हायर सैकण्डरी तक पुस्तक माला प्रकाशित की गई है उनमें जहाँ ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के अन्य महापुरुषों के जीवन और शिक्षा का वर्णन तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों आदि की जानकारी देने वाले लेख, कविताएं और गीतों का समावेश है वहीं अन्य धर्म संस्थापकों के उन उद्देश्यों शिक्षाओं और मन्तव्यों का भी समावेश किया गया है जिनके द्वारा आर्यसमाज के सिद्धान्तों और मन्तव्यों की पुष्टि होती है। उदाहरण के लिए इस्लाम और मोहम्मद साहब सम्बन्धी पाठ में एकेश्वरवाद का समर्थन तथा मूर्तिपूजा का निषेध सम्मिलित किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित जन्मगत जाति-पाँति, ऊंच-नीच तथा छुआछूत के स्थान में मनुष्य मात्र की समानता के इस्लाम के आदेश का ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक मान्यताओं के आधार पर समर्थन किया गया है।

स्पष्ट है कि यदि हमने अपनी इन शिक्षण संस्थाओं के प्रारम्भिक लक्ष्य को ध्यान में रखकर उनमें कार्य करने वाले अध्यापकों की नियुक्ति तथा धर्म शिक्षा के पाठ्यक्रम मे उपर्युक्त बातों का ध्यान रखा तो वह आज भी आर्यसमाज के उज्ज्वल भविष्य में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

राष्ट्रीय आचार संहिता :

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारी सारी आशा और अपेक्षाओं के विपरीत स्वाधीन भारत के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में उन नैतिक मूल्यों की तेजी से गिरावट हो रही है जिनके आधार पर हमारे धार्मिक और सामाजिक सुधारकों और देशभक्त नेताओं ने भारत के नव निर्माण की कल्पना की थी। हमारी शिक्षा प्रणाली का यही एक मुख्य कार्य और लक्ष्य होना चाहिए था कि उसके द्वारा शिक्षित-दीक्षित पीढ़ियाँ इन मूल्यों को अपने जीवन और व्यवहार के लिए एक आचार संहिता के रूप में ग्रहण करें। हमारे देश के शिक्षक, नेता, प्रशासक, व्यापारी, डॉक्टर, न्यायाधीश, वकील और साधारण नागरिक इन्हीं शिक्षण संस्थाओं में निर्मित होते हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि स्वाधीनता के गत वर्षों में हमने राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में कभी इस महत्वपूर्ण विषय को सम्मिलित नहीं किया जिसके द्वारा हमारे देश क नागरिकों में इस प्रकार की एक समान आचार संहिता का विकास हो सके जो हमारे राष्ट्रीय चरित्र की पहचान बन सकें। आर्यसमाज शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दिये जाने का यह भी एक उद्देश्य था कि उसमें शिक्षित-दीक्षित युवक-युवतियाँ सदियों के विदेशी शासन में उत्पन्न उन लोगों से भिन्न विचार और चरित्र के लोग हों जिन पर हमारा नवीन और स्वतन्त्र राष्ट्र अभिमान कर सके। धार्मिक और नैतिक शिक्षा मुख्यत: सिद्धान्तों पर आधारित होती है इसलिये यह भी आवश्यक है कि उसके द्वारा अथवा पृथक् रूप से विद्यार्थियों को उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी ऐसी व्यवहारिक शिक्षा दी जाय जिसे हम अपने देश की आचार संहिता कह सकें। हमारे दैनिक जीवन में इस बात का विशेष महत्व होता है कि हम अपने माता पिता, गुरु तथा अतिथियों के अतिरिक्त पड़ोसियों, सहपाठियों और देश-विदेशों के स्त्री-पुरुषों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं जिनके सम्पर्क में हम आते हैं। सड़कों आदि सार्वजनिक स्थानों,

समाज सोसाइटी समारोह आदि में हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए यह सब ऐसी बातें हैं जो आचार संहिता में सम्मिलित की जा सकती हैं। आर्यसमाज शिक्षा सभा अजमेर की ओर से इसी प्रकार की एक छोटी पुस्तिका "विद्यार्थियों के लिए आचार संहिता" के नाम से प्रकाशित की गई है। अपनी संस्थाओं के अतिरिक्त स्वयं राजस्थान के तत्कालीन शिक्षा निदेशक ने इसे सभी सरकारी स्कूलों में भी प्रसारित करने का आदेश दिया था। जिन संस्थाओं में इसका उपयोग किया गया उनके बच्चों के दैनिक व्यवहार में स्पष्ट रूप में सुधार दिखाई दिया। इसीलिए इस प्रकार की कोई देश व्यापी व्यवहारिक आचार संहिता (कोड ऑफ कॉनडक्ट) स्कूल और कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करने पर विचार करना आवश्यक है।

आर्य समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता

पुनर्गठन क्यों :

गत तीन अध्यायों में हमने इस बात पर विचार किया कि आर्य समाज किस प्रकार अपने क्रान्तिकारी स्वरूप और व्यापक प्रभाव को खोता जा रहा है हमारी सम्मति में इसका मुख्य कारण स्व. लाला लाजपतराय द्वारा दी गई उस चेतावनी की उपेक्षा है जिसके द्वारा उन्होंने आर्य समाज को तथाकथित हिन्दू धर्म में विलीन हो जाने के खतरे से सावधान किया था ।

एक विदेशी विद्वान् की आशंका :

ठीक इसी प्रकार की चेतावनी "ENCYCLOPAEDIA OF RELIGION AND ETHICS" अर्थात् धर्म और नैतिकशास्त्र विश्वकोष के लेखक जेम्स हेस्टिंग्स ने निम्न शब्दों में दी थी—

"As regards the future of the Arya Samaj, it is difficult to play the prophet. It is undoubtedly the most popular among the indigenous reforming movements in North India to-day. In the matter of female education, temperance, and other reforms, it is in the line of progress. It also ministers to the patriotic spirit through its claim that the Vedas are the original sources of all the religions and science of the world. It contains many earnest and good men who sincerely desire the welfare of their country. By its emphasis on education and social reforms it is playing no unimportaht part in the regeneration of India. **It keeps in close touch with orthodox Hinduism through the fact that comparatively few**

members of the Arya Samaj have broken caste. Will it ultimately be reabsorbed into the abyss of Hiduism, as some think probable or will it advance to a still more rational and enlightened position ?" अर्थात् आर्य समाज के भविष्य के सम्बन्ध में भविष्यवक्ता होना कठिन है इसमें सन्देह नहीं कि उत्तर हिन्दुस्तान के स्वदेशी सुधार आन्दोलनों में आज आर्य समाज सबसे अधिक लोकप्रिय है। आगे लेखक पुनः लिखता हैं कि उसमें अनेक ऐसे अच्छे व्यक्ति है जो ईमानदारी से अपने देश का कल्याण चाहते हैं। शिक्षा तथा सामाजिक सुधारों के द्वारा भारत का नवनिर्माण करने का भी यह समाज प्रयत्न कर रहा है बाद में लेखक ने **एक गम्भीर चेतावनी देते हुए लिखा है कि अपेक्षाकृत बहुत थोड़े समाज के सदस्यों ने जात-पाँत से अपना सम्बन्ध तोड़ा है और परिणामस्वरूप कट्टरपंथी हिन्दू धर्म से उसका निकट सम्बन्ध बना हुआ है ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि क्या अन्त में वह हिन्दू धर्म को खाई में विलीन तो नहीं हो जायेगा जैसा कुछ लोगों की आशंका है अथवा क्या वह जागृति और बुद्धिवाद के और अधिक ऊँचे शिखर पर पहुँचेगा।**

जैसा हमने देखा कि स्व. लाला लाजपतराय जी की आशंका के समान इस विदेशी विचारक की आशंका भी ठीक उसी कारण सही सिद्ध होती दिखायी देती है, जिसका लालाजी ने उल्लेख किया था।

पुनर्गठन की आवश्यकता :

मैं उन आशावादी व्यक्तियों में से हूँ जो यह मानते हैं कि अब भी आर्य समाज के सामने एक अवसर है कि वह इस चिन्तनीय स्थिति उभरकर फिर एक जीवित जागृत संगठन और आन्दोलन बन सके। इस दिशा में कई प्रयत्न किये गये। यहाँ मैं ऐसे ही एक प्रयत्न का उल्लेख करना चाहता हूँ, क्योंकि उससे न केवल मेरा ही

विशेष सम्बन्ध रहा, अपितु वह आर्य जगत की शिरोमणि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के माध्यम से भी किया गया था। इसका परिचय देने के लिए मैं यहाँ उस रिपोर्ट को उद्धृत करना चाहूँगा जो सार्वदेशिक सभा को प्रस्तुत की गयी वह निम्न प्रकार है।

आर्य समाज की वर्तमान स्थिति तथा भविष्य के सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा को प्रस्तुत रिपोर्ट

आचार्य श्री दत्तात्रेय जी के संयोजकत्व में सार्वदेशिक सभा द्वारा आर्य समाज के भावी कार्यक्रम तथा पुनर्गठन के सम्बन्ध में नियुक्त उप समिति की ओर से सार्वदेशिक सभा को 1983 में एक अन्तरिम रिपोर्ट पेश की गई थी। 7 अप्रैल 1983 को दीवान हाल आर्य समाज देहली में उपसमिति की बैठक हुई जिसमें अन्तरिम रिपोर्ट पर पूर्नविचार किया गया। उसमें श्री दत्तात्रेय आर्य के अतिरिक्त स्वामी विद्यानन्द जी तथा प्रो. शेरसिंह जी उपस्थित थे। बाकी दो सदस्यों अर्थात् श्री वीरेन्द्र जी, डॉ. भवानीलाल जी भारतीय ने अपनी लिखित सम्मति प्रत्येक बिन्दु पर भेज दी। विचार विनिमय के बाद अन्तरिम रिपोर्ट को कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार किया गया। जिसे श्री दत्तात्रेय जी ने सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग में औपचारिक रूप से प्रस्तुत किया। सभा ने विचार विनिमय के बाद निश्चय किया कि उप नियमों में संशोधन सम्बन्धी प्रक्रिया के अन्तर्गत इन्हें प्रसारित कर दिया जाए।

अन्तरिम रिपोर्ट

उप समिति ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट दो भागों में निम्न प्रकार से प्रस्तुत की—

प्रथम भाग

इस रिपोर्ट के प्रथम भाग में वे महत्त्वपूर्ण और आधार भूत सुझाव है जिन पाँचो सदस्यों की लगभग सर्वसम्मति थी वे इस प्रकार है—

1. आर्य समाज अपने पृथक् धार्मिक अस्तित्व को सुरक्षित रखते हुए विशाल हिन्दू समाज का अंग बना रह सकता है।

उपर्युक्त दृष्टि से आर्य समाज के वर्तमान उपनियम 3 में रेखाँकित संशोधन और जोड़कर उसे निम्न प्रकार लिखा जाए अर्थात्—

"मैं प्रसन्नतापूर्वक आर्य समाज के उद्देश्य को जैसा कि नियमों में वर्णित किए गये हैं तथा मन्तव्यों एवं सिद्धान्तों को जो वेदों के आधार पर ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में लिखे गए हैं, मानता और उनके अनुकूल आचरण करना स्वीकार करता हूँ। मैं घोषणा करता हूँ कि ईश्वर के प्रतीक के रूप में मैं किसी मूर्ति जड़ वस्तु अथवा व्यक्ति की पूजा नहीं करता और न ही श्राद्ध और तीर्थ जैसे निषिद्ध और जन्म-विवाह और मृत्यु के अवसरों पर कोई अवैदिक कार्य करता हूँ। मैं जन्मगत जातपाँत तथा छुआछूत का विचार और व्यवहार दोनों में विरोध करता हूँ।

निम्नलिखित नये उपनियम वर्तमान 4 के बाद जोड़े जाएँ:—

(क) आर्य समाज का कोई सदस्य या अधिकारी अपने नाम के आगे कोई जाति सूचक उपनाम नहीं लिखेगा और साधारणतया 'आर्य' उपनाम का ही प्रयोग करेगा।

(ख) सदस्यों की दो श्रेणियाँ होंगी एक साधारण जिन्हें उपर्युक्त सिद्धांत सम्बन्धी नियमों के आधार पर प्रवेश दिया जावे। दूसरे उनमें से वे जो समाज के निर्धारित कार्यक्रमों में से किसी एक या अधिक में नियमित रूप से कार्यरत हों, उन्हें सक्रिय सदस्य समझा जाये।

इन कार्यक्रमों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हो सकते हैं—
1-वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार जिनमें संन्यासी, उपदेशक लेखक, प्रकाशक आदि सम्मिलित हों, 2-शुद्धि, 3-अन्तर जातीय

विवाह 4-सामाजिक सेवा 5-जात-पाँत छुआछूत का निराकरण 6-शिक्षा कार्य 7-महिला सुधार 8-ग्राम प्रचार आदि।

(ग) आर्य समाज के पदाधिकारी सक्रिय सदस्यों में से ही निर्वाचित हो सकेंगे।

(घ) किसी राजनैतिक दल का पदाधिकारी तथा उसका सांसद, या विधान सभा आदि में निर्वाचित व्यक्ति आर्य समाज, आर्य प्रतिनिधि सभा या सार्वदेशिक सभा का पदाधिकारी नहीं हो सकेगा। ऐसे व्यक्ति पर कार्यकारिणी आदि की सदस्यता के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा।

उपर्युक्त नियमों का व्यावहारिक रूप से पालन होता है या नहीं यह निश्चित करने के लिए कोई अधिकृत माध्यम आवश्यक है अन्यथा इन उपनियमों का कोई उपयोग नहीं है। इस दृष्टि से संशोधित नियमों का उल्लघन होने पर न्याय सभा या सतर्कता समिति को निश्चित प्रक्रिया द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का अधिकार होगा जिसमें पद मुक्ति और सदस्यता से पृथक् किया जाना सम्मिलित है।

2. सार्वदेशिक सभा के कार्यालय का गठन विभागों के आधार पर मन्त्री परिषद् की तरह से किया जाये।

3. (23) प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं के संविधानों में एक रूपता का प्रावधान किया जाय। इसी प्रकार नीचे के जिला स्तर, तहसील स्तर पर भी ऐसी ही व्यवस्था का प्रावधान प्रांतीय सभाओं के संविधान में रखा जाये।

4. (25) सत्संगों में उपस्थित तथा शतांश चन्दे संबंधी नियमों के व्यावहारिक पालन के लिए निश्चित प्रक्रिया एवं व्यवस्था का प्राबधान हो तथा पदाधिकारियों के लिए पचास प्रतिशत उपस्थित अनिवार्य हो।

5. (30) दलगत राजनीति से आर्य समाज को पृथक् रखने या उसके व्यापक धार्मिक तथा राष्ट्रीय स्वरूप को सुरक्षित रखने के

लिए उपनियमों में आवश्यक प्रतिबन्धों का समावेश किया जाय जैसे-समाज भवनों में राजनैतिक सभाओं, सम्मेलनों तथा उत्सवों में दलगत राजनीति सम्बन्धी व्याख्यानों और राजनैतिक निर्वाचनों में आर्य-समाज की ओर से किसी राजनैतिक पार्टी के समर्थन का निषेध।

6. (37) आर्य समाज के आन्तरिक विवादों को तटस्थ व्यक्तियों की एक वरिष्ठ समिति द्वारा निपटाने की व्यवस्था और उसका निर्णय न मानने पर अनुशासन की कार्यक्रमों का प्रावधान।
7. (38) आर्य समाज मन्दिरों में दैनिक कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाये जिनमें सन्ध्या-हवन, कथा आदि का नियमित प्रबन्ध हो।
8. जन गणना में अपने को "आर्य" लिखने का अनिवार्य प्रावधान उपनियम द्वारा किया जाये। इसी प्रकार आर्यों के यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कार समाज मन्दिर में ही किये जायें।

कुछ संशोधन

उपर्युक्त अन्तरिम रिपोर्ट में कुछ सदस्यों द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित संशोधन किया गया :—

"आर्य समाज वेदोक्त वर्ण व्यवस्था को मानता है। इस वर्ण व्यवस्था का आधार गुण कर्म स्वभाव है। प्राचीनकाल मे किसी व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण आचार्य अथवा राजकीय व्यवस्था द्वारा होता था। कालान्तर में यह व्यवस्था जाती रही। परिणामतः वर्त्तमान में वर्णव्यवस्था गुण कर्म स्वभाव की बजाय जन्म पर आश्रित होकर रह गई और अनेक सामाजिक बुराइयों का कारण बन गई। इसलिये आपद्धर्म के रूप में अब यह उचित जान पड़ता है कि आर्यसमाजी अपने नाम के साथ जन्म मूलक जाति (रूढ़ अर्थ मे) के सूचक शब्दों को लगाना बन्द करदें। यदि कुछ लगाना आवश्यक ही हो तो रूढ़ अर्थों में 'आर्य' शब्द को लगा सकते हैं।"

प्रथम भाग में निम्नलिखित संशोधन किये गए अर्थात् उपनाम के रूप में 'आर्य' शब्द का उपयोग करने सम्बन्धी प्रस्ताव संख्या

एक अनुभाग (क) तथा प्रस्ताव संख्या 8 को स्वीकार करते हुए यह स्पष्टीकरण किया गया कि आर्य सामाजिक क्षेत्र में उपनाम के रूप में 'आर्य' वैदिक धर्म के अनुयायियों के लिए रूढ़ हो गया है इसलिए जनगणना तथा नाम के साथ उसका यही अर्थ समझा जाये।

दूसरा संशोधन यह किया गया कि आर्य समाज में प्रवेश सम्बन्धी उपनियम संख्या एक तथा अन्य प्रस्तावित उप नियमों की व्यवहार में अवहेलना तथा उपेक्षा न हो इसके लिए न्याय सभा से भिन्न एक पृथक् सतर्कता समिति का प्रावधान किया जाये जिसे स्वयं अथवा किसी द्वारा प्राप्त शिकायत के आधार पर उचित प्रक्रिया के बाद दोषी सदस्यों को चेतावनी, निलम्बन तथा पद और सदस्यता से निष्कासित करने का अधिकार हो। इस समिति के निर्णय पर पुन: विचार या अपील सुनकर अन्तिम फैसला करने का अधिकार सार्वदेशिक सभा द्वारा गठित तीन सदस्यीय ट्राइब्यूनल को होगा।

दूसरा भाग

दूसरे भाग में निम्नलिखित संशोधन रखे गये जिनके सम्बन्ध में समिति ने सुझाव दिया कि इनको तथा अन्य प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिये सार्वदेशिक सभा एक या अधिक उप समितियाँ बनाकर उनकी सिफारिशों को ध्यान में रखकर यथाशीघ्र निर्णय अथवा आवश्यक व्यवस्था करे। इन सुझावों को और अधिक स्पष्ट और निश्चित रूप देने का कार्य भी इन्हीं उप समितियों द्वारा किया जाये।

प्रस्तावित संशोधन निम्न प्रकार हैं :—

1. आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं की प्रबन्ध समितियों में आर्य समाजियों का बहुमत तथा कम से कम मुख्याध्यापकों और आचार्यों का आर्यसमाजी होने की व्यवस्था।

2. पुरोहित प्रणाली-उनके प्रशिक्षण, वेतन तथा नियन्त्रण

की व्यवस्था। आर्य समाज के माध्यम से शुद्ध हुए व्यक्ति को आर्य उपनाम देकर आर्य समाज का सहायक सदस्य और बाद में पूर्ण सदस्य बनाने सम्बन्धी प्रावधान।

3. (5) प्रमुख संस्कार विशेषकर विवाह आदि आर्य समाज मन्दिर में किए जाने का प्रावधान।

4. (12) केन्द्रीय पुस्तकालय तथा शोध केद्रों की स्थापना।

5, (13) प्रचार शैली में सुधार जैसे व्यक्तिगत सम्पर्क निशुल्क साहित्य वितरण आदि।

6. (14) प्रशिक्षण केन्द्र जिनमें उपदेशक तथा पूरे समय के कार्यकर्त्ता तैयार किये जा सकें।

7. (15) आर्य शिक्षण संस्थाओं का केन्द्रीय संगठन, तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में दयानंद कृत वेद भाग्य के अध्ययन का प्रावधान।

8. (19) विद्वानों की गोष्ठियाँ।

9. (20) वेद के आधार पर सत्य विद्याओं का अधिकृत विश्लेषण और विवेचन।

10. (22) रामायण, महाभारत आदि लोकप्रिय ग्रन्थों का वैदिक संस्करण।

11. (26) शिक्षण संस्थाओं की वर्तमान स्थिति पर विचार तथा उनमें धर्म शिक्षा की व्यवस्था।

12. (27) गुरुकुल का केन्द्रीय संगठन।

13. (28) आर्यसमाज समर्थक समाचार पत्रों का प्रकाशन।

14. (29) स्वामीजी की जीवनी तथा आर्यसमाज के इतिहास का अधिकृत लेखन।

15. (31) राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय आर्यों का सहयोग।

16. (32) ग्रामीण क्षेत्रों के लिये विशेष रूप से प्रशिक्षित पुरोहित।

17. (33) गाँवों में सघन प्रचार की व्यवस्था।

18. (34) गाँवों और तहसीलों में भजन और संगीत द्वारा प्रचार।

19. (35) उत्सवों पर वैदिक सिद्धान्तों पर उपदेश और अवैदिक सिद्धान्तों का खण्डन।

20. (36) युवक युवतियों का संगठन (आर्य वीर दल आदि)।

21. (37) आर्य समाजों में दल बन्दी पर रोक।

22. (38) आर्य समाज की आंतरिक कमजोरियों का विश्लेषण व उपाय।

23. (40) व्यवहारिक प्रतिज्ञायें और उनका पालन।

24. (41) नियमित रचनात्मक कार्यक्रम, यज्ञ, संध्या. स्वाध्याय, आय का पांचवाँ भाग दान, मन्दिरों की स्वच्छता, पुरोहित की नियुक्ति आदि।

अन्य सुझाव

(क) संन्यासी तथा वानप्रस्थी की दीक्षा केवल अधिकृत माध्यम द्वारा ही हो।

(ख) आर्य परिवार संघ और उसमें रोटी-बेटी व्यवहार की व्यवस्था।

(ग) पदाधिकारियों के लिये अन्तर्जातीय विवाह की शर्त।

(घ) आकाशवाणी आदि द्वारा वेद प्रचार।

(च) शतकुण्डी यज्ञों आदि अवैदिक कार्यों पर प्रतिबन्ध।

(छ) समाजों और उसकी संस्थाओं की सम्पत्ति के अधिकार तथा प्रबन्ध के लिये अखिल भारतीय कानून या एक्ट।

इन सुझावों का उद्देश्य

जैसा सार्वदेशिक सभा को प्रेषित उपर्युक्त रिपोर्ट में दिये गये सुझाव से स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य केवल कुछ छोटे-मोटे सुधार या परिवर्तन करना न होकर कुछ हद तक आर्य समाज का पुनर्गठन करने की प्रक्रिया प्रारम्भ करना था किन्तु सभा के कुछ

प्रभावशाली अधिकारियों ने मुझे कहा कि आर्य समाज का संगठन पहले से ही बना हुआ है अतः उसके पुनर्गठन की क्या आवश्यकता है ? इसके पीछे यह स्पष्ट संकेत था कि आर्य समाज की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में वह या तो सन्तुष्ट थे या उसके भविष्य के सम्बन्ध में कोई कारगार कदम उठाने के पक्ष में नहीं थे। यही कारण था कि जहाँ मेरे संयोजकत्व में बनी समिति के सुझावों को में सदा आर्य समाज के पुनर्गठन संबंधी सुझाव कहता रहा वहाँ सभा में उन्हें आर्य समाज के भावी कार्यक्रम सम्बन्धी सुझाव लिखा जाता रहा। अस्तु।

कृण्वन्तो आर्यान् हिन्दू :

जैसा इस लेख माला से स्पष्ट है कि मेरी यह मान्यता है कि आर्य समाज की वर्तमान शिथिलता का मुख्य कारण उसका शनैः शनै होने वाला हिन्दूकरण है जिसके परिणामस्वरूप आर्य समाज को हिन्दू धर्म का एक सुधारक सम्प्रदाय मात्र समझा जाने लगा है और इस प्रकार समस्त संसार और विशेषकर पहले समस्त हिन्दुओं के आर्य बनाने के ऋषि दयानन्द के मुख्य उद्देश्य के स्थान में अब यह प्रवृत्ति प्रारम्भ हो रही है कि जो हिन्दू मूर्ति पूजा, श्राद्ध, जात पाँत आदि अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को त्यागकर आर्य समाज में प्रविष्ट हुए थे उनके बाद की पीढ़ी के आर्य समाजियों को किस प्रकार से उसी परम्परागत हिन्दू धर्म और समाज में विलीन किया जाय अर्थात् 'कृण्वन्तो विश्वामर्यम्' के स्थान में कृण्वन्तो आर्यान् हिन्दू अब कम से कम व्यवहार में आर्यसमाज का कार्यक्रम बनता जा रहा है।

नवीन प्रण का महत्व :

इस प्रवृत्ति का निराकरण करने के उद्देश्य से सार्वदेशिक सभा को प्रेषित रिपोर्ट में आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए एक नवीन प्रण अनिवार्य बनाने का सुझाव दिया गया था जिसके द्वारा आर्य समाज के दस नियमों में निष्ठा के अतिरिक्त स्पष्ट रूप

से यह घोषणा करना भी आवश्यक होता कि आर्य समाज में ऐसा कोई व्यक्ति अधिकारी तो दूर सदस्य तक न हो और न बना रहे मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तीर्थ जात-पाँत और छुआछूत आदि पौराणिक धर्म की आधारभूत मान्यताओं और रीतिरिवाजों में विश्वास करता हो या उनमें किसी का व्यवहार करता हो।

आर्य समाज की सदस्यता का इतिहास

प्रारम्भ में आर्य समाज की सदस्यता के लिये केवल दस नियमों को स्वीकार करना ही पर्याप्त था और आज भी कुछ लोग केवल इसी एक शर्त को पर्याप्त समझते हैं। स्व. लाला लाजपतराय ने अपनी प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक "हिस्ट्री आफ दी आर्य समाज" के चौथे अध्याय में इस विवाद का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार दस नियमों के अतिरिक्त वेदों के आधार पर ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार करना भी आर्य समाज की सदस्यता के लिये आवश्यक समझा गया। यह इसलिये भी आवश्यक था कि आर्य समाज जैसा प्रचारक आन्दोलन बिना कुछ निश्चित सिद्धान्तों और मान्यताओं के अपनी धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं का प्रभावशाली ढंग से प्रचार नहीं कर सकता था। यह स्थिति उस समय और भी अधिक स्पष्ट होने लगी जब मुसलमान और ईसाई धर्म प्रचारक अपनी मान्यताओं का सफलता से प्रचार करते थे, जो तर्क सम्मत न होने पर भी सरल और निश्चित होती थी जब कि दूसरी और हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी निर्बलता ही यह थी कि वह अपने धर्म का प्रचार प्रसार तो दूर अन्य धर्मों के आक्रमण से अपनी रक्षा तक करने में अपने को असमर्थ पाता था क्योंकि उसकी अपनी धार्मिक और सामाजिक मान्यताएँ परस्पर विरोधी तथा अनिश्चित थी। अस्तु।

आर्य समाज के इस अनुभव और आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही सन् 1934 में उसके संविधान में औपचारिक संशोधन

किया गया और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाज की सदस्यता के लिये दस नियमों के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को भी अनिवार्य कर दिया।

नवीन सशोधन की आवश्यकता :

गत कुछ वर्षों के अनुभव से स्पष्ट हो गया है कि यह संशोधन भी अब अपर्याप्त तथा प्रभाव हीन हो गये हैं इसलिए सदस्यता सम्बन्धी उप नियम में एक और संशोधन करने की आवश्यकता है जिसे ध्यान में रखकर ही सार्वदेशिक सभा को सदस्यता सम्बन्धी उपनियम में उपर्युक्त प्रण जोड़ने की सिफारिश की गई थी। जिस प्रकार वेद के नाम पर भ्रम प्रसार रोकने के लिये दस नियमों के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यों को स्वीकार करना आवश्यक समझा गया उसी प्रकार आज स्वामी जी द्वारा निषिद्ध मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तीर्थ, जात-पाँत, छुआछूत आदि के सम्बन्ध में जिस प्रकार आर्य समाज के सदस्य ही नहीं अधिकारी तक समझोते की नीति अपनाकर आर्य समाज की हिन्दू या पौराणिक धर्म से इस भिन्नता को ओझल कर रहे हैं उसे देखते हुए अब समय आ गया हैं कि स्वामी जी द्वारा वेदों के आधार पर इन अन्ध विश्वासों ओर पाखंडों का जो निषेध किया गया है उसकी आर्य समाज द्वारा अनुपालना की जाती है या नहीं यह सुनिश्चित करने के लिये उसके संविधान में यह तीसरा संशोधन करना अनिवार्य हो गया है।

सम्पर्क- 9029421718

(4)

सत्य शोधक दयानन्द

खण्डन मण्डन का विवाद :

ऋषि दयानन्द का धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में वही स्थान है जो एक रिसर्च स्कालर अर्थात् शोध विद्वान का विज्ञान के क्षेत्र में होता है। ऋषि के जीवन का मुख्य उद्देश्य इस क्षेत्र में सत्य की खोज करना था क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों में जितने अन्ध विश्वास सामाजिक कुरीतियाँ और यहाँ तक कि अमानवीय और अनैतिक परम्परायें चल पड़ी थी, उनका विवेचन किये बिना कि क्या सत्य है, क्या असत्य है इसकी खोज नहीं की सकती थी।

उन्होंने इसीलिये अपने अमर ग्रन्थ का नाम 'सत्यार्थ प्रकाश' रखा और उसमें बार-बार दोहराया कि उनका उद्देश्य कोई नवीन मत या पन्थ या सम्प्रदाय चलाने का नहीं है किन्तु प्राचीन वैदिक धर्म के वर्तमान विकृत स्वरूप का विवेचन कर उनकी पुनर्स्थापना है। विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि इस आधुनिक क्षेत्र में अभी तक जो नई पुरानी खोजें हुई हैं वे इसी प्रकार के विवेचन और परीक्षण ही नहीं अपितु इनसे सम्बन्धित प्रयोगशालाओं में वास्तविक प्रयोगों के परिणामस्वरूप ही संभव हुई हैं। इसी वैज्ञानिक परम्परा का पालन करते हुए ऋषि दयानन्द के लिये आवश्यक था कि वे अपनी मान्यताओं को सिद्ध करने के लिये न केवल तर्क और प्रमाणों से उन्हें सिद्ध करें बल्कि यह भी आवश्यक था कि अन्य सब मान्यताओं का विश्लेषण, परीक्षण और विवेचन भी करें। क्यों कि ऐसा किये बिना वे समस्त संसार को आर्य बनने का निमंत्रण नहीं दे सकते थे। प्राचीन भारत में भी भिन्न-भिन्न विचारों के दार्शनिक अपनी मान्यताओं और सिद्धांतों को प्रमाणित करने के लिये सार्वजनिक शास्त्रार्थ अर्थात् वाद-विवाद करते थे।

आज की आधुनिक प्रक्रिया में ये सब बातों लेखों पुस्तकों तथा प्रचार प्रसार के अन्य आधुनिक साधनों द्वारा की जाती हैं।

धर्म और विज्ञान :

धार्मिक और आध्यात्मिक खोज तथा वैज्ञानिक खोज में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि मतभेद, विरोध और खण्डन मण्डन ही नहीं अपितु प्रयोगों द्वारा उनको सिद्ध किया जा सकता है धर्म इसके विपरीत विश्वास और मान्यता का क्षेत्र है और आध्यात्मवाद में ये केवल चिंतन और साधना ही संभव है। यही कारण है कि जहाँ आजकल के आधुनिक शिक्षित या दीक्षित व्यक्ति और वैज्ञानिक केवल विश्वास पर आधारित ईश्वर या उससे सम्बन्धित या अन्य धार्मिक मान्यताएँ स्वीकार नहीं करते। परिणाम यह होता है कि ईश्वर और धर्म से लोगों की आस्था उठकर वे नास्तिक या एग्नोस्टिक बन जाते हैं अर्थात् इन विषयों के बारे में न कोई मान्यता रखते हैं और न ही उनका विरोध करते हैं।

धर्म और तर्क :

दयानन्द आधुनिक युग के संभवतः पहले विद्वान और महा-पुरुष थे जो धार्मिक तथा अध्यात्मिक क्षेत्र में भी तर्क और बुद्धि जैसे वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करते थे। परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर कट्टरपंथी, पौराणिक व अन्य धार्मिक नेता उन्हें नास्तिक तथा धर्म और श्रद्धा का विरोधी समझते थे वहीं दूसरी ओर स्वयं आर्यसमाज के अनेक निष्ठावान व्यक्तियों का यह कहना है कि विश्वास और श्रद्धा से रहित आर्यसमाज केवल एक विचारधारा सा आन्दोलन बन कर रह गया है। परिणामस्वरूप आयसमाज उस प्रकार का व्यापक धर्म नहीं बन सका जैसा विश्वास तीर्थ और और गुरूओं आदि पर आधारित अन्य धर्म या पन्थ बनने में सफल हुए हैं।

मेरे विचार में ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में ये दोनों ही आरोप अर्द्ध सत्य पर आधारित हैं। उन्होंने जब यह कहा कि "यस्तर्केण अनुसन्धते स धर्म :" इसका अर्थ यह नहीं था कि केवल तर्क या शास्त्रार्थ तथा वाद-विवाद ही धर्म का आधार है। दूसरी ओर उनकी इस मान्यता में एक महत्वपूर्ण चेतावनी निहित थी कि केवल गुरू महाराज कुछ कहते हैं या किसी धार्मिक ग्रन्थ में कुछ लिखा है या अनपढ़ और मूर्ख अपनी ना समझी से जिन चमत्कारों, अन्ध-विश्वासों और अनैतिक तथा असामाजिक बातों पर विश्वास करते हैं और कुछ तथाकथित विद्वान और धर्माध्यक्ष केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत होकर इन सबको स्वीकार करते हैं और अन्यों को भी ऐसा करने के लिये कहते हैं, वह भी वास्तविक अर्थों में धर्म नहीं हो सकता दूसरी ओर ऋषि दयानन्द का श्रद्धा और विश्वास पर भी भरोसा था अन्तर केवल इतना था कि वे यह कहते थे कि जो सत्य है उसी पर श्रद्धा और जो तथ्य है उसी पर विश्वास किया जाना चाहिये अन्यथा भूत-प्रेत, गुरू, तीर्थ, श्राद्ध यहाँ तक कि सती, छुआछूत आदि सब बुद्धिविहीन बातों को धर्म का अंग समझना होगा। जिसके परिणामस्वरूप कुछ निहित स्वार्थी लोगों को भले ही लाभ हो किन्तु उनके कारण सारे समाज और राष्ट्र को हानि होगी।

सत्य शोधक दार्शनिक तथा सुधारक :

सत्य शोधक विचारक और दार्शनिक होने के अतिरिक्त ऋषि दयानन्द एक महान् धार्मिक और सामाजिक सुधारक भी थे। प्रायः ये दोनों क्षेत्र अलग समझे जाते हैं। और यह आवश्यक नहीं है कि एक विद्वान और दार्शनिक सुधारक भी हो, किन्तु दयानन्द में ये दोनों विशेषतायें थी उसका एक कारण तो तात्कालिक परिस्थिति भी कही जा सकती है। ऋषि दयानन्द बालक मूलशंकर के रूप में सच्चे शिव अर्थात् ईश्वर प्राप्ति के लिये घर त्याग कर निकले थे

किन्तु इस खोज में उन्हें अनेक प्रान्तों और नगरों का भ्रमण करना पड़ा और उन्होंने देखा कि जहाँ वे और उनके जैसे अनेक व्यक्ति केवल अपनी उन्नति और मुक्ति के लिये चिन्तित हैं, जबकि उनके देशवासी सदियों की राजनैतिक दासता और परिणाम स्वरूप दरिद्रता, निरक्षरता, अज्ञान आदि के शिकार हैं। इतना ही नहीं अनेक धार्मिक अंध विश्वासों और सामाजिक कुरीतियों के परिणाम-स्वरूप उनका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन भी दयनीय है दयानन्द ने यह सारी स्थिति देखकर केवल अपनी उन्नति या मोक्ष के लक्ष्य को एक प्रकार से त्याग कर देश और समाज की उन्नति में अपनी उन्नति समझने का अधिक ऊँचा आदर्श स्वीकार कर लिया। और उन्होंने न केवल विदेशी शासन से देशवासियों को मुक्त होने को प्रेरणा दी बल्कि स्वयं उनके द्वारा पहनी हुई उन धार्मिक और सामाजिक बेड़ियों से भी उन्हें मुक्त करने का संकल्प लिया जिनका परिणाम राजनैतिक दासता भी थी।

हिन्दू समाज की दुर्दशा :

इन सब बुराइयों का सबसे अधिक दुष्परिणाम इस देश के करोड़ों हिन्दुओं को भुगतना पड़ रहा था लगभग 800 वर्ष के विदेशी मुस्लिम शासन और उसके बाद लगभग 200 वर्ष के अंग्रेजी शासन के कारण हिन्दू समाज अपने आत्म गौरव और प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को भूल चुका था। ऐसा लगता था मानो उनमें जीवन के कोई चिन्ह ही बाकी नहीं थे। ऋषि दयानन्द की मान्यता थी कि उनकी राजनैतिक दासता का भी एक कारण वे धार्मिक अंधविश्वास और सामाजिक बुराइयाँ थी जिनके कारण हिन्दू समाज न केवल अपना स्वाभिमान ही खो बैठा था बल्कि इन राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक बन्धनों से छूटने की इच्छा शक्ति भी उसमें बाकी नहीं थी। सदियों की राजनैतिक दासता के अतिरिक्त विदेशी शासकों को धरोहर के रूप में जो विधर्मी तत्व यहाँ जड़ जमा चुके

थे उनके द्वारा हिन्दू धर्म और समाज पर निरन्तर आक्रमण होते थे। क्योंकि इस्लाम और ईसाई दोनों प्रचारक धर्म हैं और येन केन प्रकारेण हिन्दुओं को अपने धर्म में दीक्षित करने के लिये वे संगठित प्रयत्न करते रहे हैं। दुर्भाग्य से हिन्दू इस क्षेत्र में भी उनका मुकाबला तो दूर अपनी रक्षा तक करने में असमर्थ था। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी उसके अपने वे धार्मिक विश्वास और कुरीतियाँ थी जिनको लेकर न केवल विधर्मी उन पर आसानी से आक्रमण कर लेते थे अपितु उसके परिणामस्वरूप स्वयं हिन्दू समाज सर्वथा परमुखापेक्षी और निस्सहाय बन बैठा था इसका मुख्य कारण तो उनकी अपनी धार्मिक और सामाजिक निर्बलतायें थी जो राजनैतिक दासता के कारण और भी अधिक गंभीर हो गई थी। ऋषि दयानन्द इसीलिये सबसे पहले अपना घर सुधारना चाहते थे और जिन अंध विश्वासों और कुरीतियों के कारण विधर्मी उन पर आसानी से आक्रमण करते थे उन्हें स्वयं दूर करने के लिये उन्होंने हिन्दू समाज को प्रेरित किया इसके लिये आवश्यक था कि स्वामी जी इन सब बुराइयों की समीक्षा करके उनके बौद्धिक और परम्परागत आधार को ही समाप्त करते। इसीलिये उन्हें समस्त हिन्दुओं को मान्य वेदों का आश्रय लेना पड़ा और वेदों की शिक्षा के विपरीत पुराण आदि में उल्लिखित जो मान्यताएं थी उनका खण्डन करना पड़ा। दूसरी ओर उनकी दूरदर्शी दृष्टि ने देखा कि हिन्दुओं के परम्परागत विरोधी अहिन्दू इतने संगठित और साधन सम्पन्न हैं कि उनका मुकाबला केवल हिन्दुओं के सदियों से टूटे-फूटे गढ़ की मरम्मत मात्र से नहीं हो सकता था इसलिये उन्होंने एक चतुर सेनानायक की तरह सुरक्षात्मक आक्रमण करना आवश्यक समझा और यही कारण है कि जहाँ एक ओर उन्होंने हिन्दू समाज को अपनी दुर्बलताओं से मुक्त होने की प्रेरणा दी, वहीं उन दुर्बलताओं के कारण उन पर आक्रमण करने वाले तत्वों पर भी स्वयं आक्रमण करना अनिवार्य समझा।

खंडन की आलोचना :

ये सब विवेचन मैं यह सिद्ध करने के लिये कर रहा हूँ कि तत्कालीन ऐतिहासिक कारणों और परिस्थितियों को भूलकर उनके कुछ समालोचक उनके द्वारा पौराणिक हिन्दू धर्म ही नहीं इस्लाम और ईसाई धर्म की मान्यताओं का खंडन करना उनकी लोकप्रियता और महानता में बाधक समझते हैं। इतना ही नहीं जिन हिन्दुओं की रक्षा के लिये उन्हें यह अप्रिय कार्य करना पड़ा वे भी आज भूलते जा रहे हैं कि ऋषि दयानन्द ने न केवल अपने व्यक्तिगत मोक्ष का त्याग करके एक आदर्श उनके सामने रखा अपितु खंडनात्मक समझा जाने वाला यह अप्रिय कार्य उन्हें विवश होकर स्वय हिन्दू समाज की रक्षा के लिये करना पड़ा, जैसा हम ऊपर बता चुके हैं। हम यह भी देख चुके हैं कि हमने जिस विकृत धर्म निरपेक्षता को आज अपना आदर्श माना है उसके परिणामस्वरूप न केवल देश की राज्य व्यवस्था डगमगा रही है बल्कि सबसे अधिक हानि अनेक मत, पन्थों और जातियों तथा देवी देवताओं में बटे हिन्दू समाज को हुई है चाहे जो हो इसमें हिन्दू समाज की अहसान फरामोशी और कृतघ्नता समझता हूँ कि जिनके लिये ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज ने ये कड़वे समझे जाने वाले घूँट पिये वे ही आज ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के इस महान ऋण को भुला बैठे हैं। यह ठीक है कि जो दवाई या आपरेशन एक डाक्टर किसी मरीज को देता है तो उस मरीज के अच्छा होने पर उसकी आवश्यकता नहीं रहती किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जब वह रोगी मरणासन्न पड़ा था उस समय किया गया उसका उपचार भी उपयुक्त नहीं था। हमने स्वयं पहले यह स्वीकार किया है कि आर्यसमाज को अब अपने प्रचार और प्रसार के तरीकों में आधुनिक परिस्थितियों के अनुसार सुधार और परिवर्तन करना चाहिये किन्तु हमें यह भी स्वीकार करना चाहिये कि ऋषि दयानन्द ने और आर्यसमाज ने अपने भविष्य और लोकप्रियता को दाँव पर लगाकर जिस देश और

जिन लोगों के लिये तत्काल परिस्थितियों में यह अप्रिय कार्य किया कम से कम उन्हें इस त्याग और बलिदान के ऐतिहासिक महत्व को कम करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये बल्कि उनके कारण यदि आर्यसमाज की वर्तमान लोकप्रियता कम हुई तो उसकी क्षति-पूर्ति करने के लिये उसके कार्य में और अधिक सक्रिय सहयोग देना चाहिये इसके स्थान में यदि स्वयं हिन्दू या 'हिन्दू परिवार' वाले संगठन या नेता आर्यसमाज की केवल इसलिये निन्दा करें कि उसने अपने प्रारंभिक काल में मुस्लिम और ईसाई धर्मों के अतिरिक्त तथाकथित हिन्दू धर्म के प्रायः सब पंथों और मतों की समीक्षा की थी विशेषकर मूर्तिपूजा जैसे राष्ट्रीय अभिशाप की, तो इसे उचित नहीं कहा जा सकता।

हम ऊपर देख आये हैं कि ऋषि दयानन्द को यह अप्रिय कार्य स्वयं तत्कालीन हिन्दुओं के हित और रक्षा के लिये करना पड़ा। यदि एक सर्जन पैर में गेंगरीन होने पर किसी व्यक्ति की इसलिये टाँग काट देता है कि ऐसा नहीं किया गया तो सारे शरीर में गेंगरीन फैलकर वह रोगी की मृत्यु का कारण हो सकती है, किन्तु रोगी अच्छा होने के बाद यदि इसलिये उस सर्जन या डाक्टर की निन्दा करे कि डॉक्टर ने उसकी टाँग काट दी थी और यह स्मरण न रखे कि डॉक्टर ने यह कार्य उसके हित तथा प्राण रक्षा के लिये किया था तो उस रोगी को क्या समझा जाय ?

यही स्थिति हमारे देश के हिन्दू धर्माध्यक्षों की ही नहीं बल्कि अनेक कट्टरपंथी राजनेताओं की भी है। अहिन्दूओं की तो बात करना ही व्यर्थ है।

सत्यार्थ प्रकाश के 14 अध्यायों में से 10 में वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द की मान्यता का मंडनात्मक विवेचन है, केवल अन्तिम 4 में अन्य धर्मों का समीक्षात्मक या खण्डनात्मक विश्लेषण है और

उनकी भूमिका में स्वयं ऋषि ने लिखा है कि उनका उद्देश्य किसी का मन दुखाना नहीं बल्कि सत्यासत्य का निर्णय करना है, इतना ही नहीं उन्होंने यहाँ तक स्वीकार किया है कि यदि कोई निष्पक्ष होकर उन्हें उनकी किसी भूल या गलती से अवगत करावे तो वे बिना संकोच उसे दुरुस्त करने को उद्यत हैं। एक तत्ववेत्ता दार्शनिक के शोध कार्य का भी यही तरीका है और फिर दयानन्द तो एक सुधारक भी थे उनके लिये अन्य विचारों तथा व्यवहारों की समीक्षा करना वैसे भी आवश्यक था, जैसा हम ऊपर देख आये हैं।

---

(5)

आर्यसमाज और राजनीति

अंग्रेजी शासन में आर्यसमाज को एक राजनैतिक ही नहीं राजद्रोही संगठन भी समझा जाता था उसका एक कारण तो सर्व विदित ही है अर्थात् कांग्रेस के सन् 1925 के पूर्ण स्वाधीनता संबंधी प्रस्ताव से लगभग 50 वर्ष पूर्व ऋषि दयानन्द द्वारा की गई यह घोषणा कि—

"विदेशी राज्य चाहे माता-पिता के समान ही क्यों न हो वह स्वदेशी राज्य की बराबरी नहीं कर सकता।"

राजद्रोही संगठन— स्वयं पश्चिम में कुछ राजनीतिक चिन्तक "Good Government is no substitute for Self Government" अर्थात् सुराज्य स्वराज्य का विकल्प नहीं हो सकता, कहकर इसी विचार को प्रतिध्वनित करने लगे तो उसे तत्कालीन स्थिति में एक क्रांतिकारी विचार समझा गया। स्पष्ट है कि भारत में विदेशी अर्थात् अंग्रेजी राज्य जब अपने पूर्ण यौवन पर था उस समय अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा से सर्वथा अछूते ऋषि दयानन्द जैसे महापुरुष द्वारा इस प्रकार की घोषणा कितना साहसिक और क्राँतिकारी कदम रहा होगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्थिति में उन जैसे प्रखर देशभक्त व्यक्ति द्वारा स्थापित अर्थात् आर्यसमाज और उसकी गुरुकुल जैसी शिक्षण संस्थाओं तक को अंग्रेज शासक राजद्रोह का गढ़ क्यों समझते थे यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

सामाजिक सुधार और राजनैतिक चेतना— आर्य समाज ने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में जो सुधार आन्दोलन प्रारम्भ किया वह भी अंग्रेजों की दृष्टि में विदेशी शासन के विरुद्ध जन चेतना का प्रारम्भ था। ब्रिटेन के भावी प्रधानमन्त्री रेमजे मैकडानल्ड को कुछ आर्य समाजी नेताओं ने जब यह समझाने का प्रयत्न किया कि आर्य समाज तो केवल धार्मिक तथा सामाजिक और शैक्षणिक कार्य

करता है फिर भी उसे अंग्रेजी सरकार राजद्रोही संस्था क्यों मानती है, तो मेकडोनल्ट ने उत्तर दिया कि ऋषि दयानन्द द्वारा प्रेरित धार्मिक तथा समाजिक सुधार भारतवासियों में राजनैतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करेंगे और परिणामस्वरूप अंग्रेजी शासन का विरोध और स्वराज की भावना उत्पन्न होगी। अंग्रेजों की शंका का यही कारण है इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधुनिक भारत में राजनैतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना का प्रथम बीजारोपण करने का श्रेय यदि किसी को है तो वह ऋषि दयानन्द तथा उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज को है।

स्वाधीनता के बाद की स्थिति :

सामाजिक और धार्मिक सुधार के इस प्रकार के आन्दोलनों के कारण उत्पन्न राजनैतिक चेतना के परिणामस्वरूप जब हमारा देश वास्तव में अंग्रेजी शासन से मुक्त होकर स्वतन्त्र हुआ तो धीरे-धीरे राष्ट्रीयता की यह भावना एक विशेष प्रकार की राजनैतिक भावना एक विशेष प्रकार की राजनैतिक विचार धारा में बदल गई जिसका मुख्य उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण सत्ता प्राप्त करना हो गया।

राजनैतिक नहीं राष्ट्रीय :

इस सन्दर्भ में आज यह कहना अधिक यथार्थ होगा कि आर्य समाज कोई राजनैतिक संगठन या आन्दोलन नहीं है, यद्यपि वह राजनैतिक क्षेत्र में एक राष्ट्रीय आंदोलन और धार्मिक क्षेत्र में एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है जैसा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के उसके लक्ष्य से स्पष्ट है।

आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति :

दुर्भाग्य से स्वाधीनता के गत कुछ वर्षों में आर्यसमाज का यह आन्दोलन न केवल शिथिल हो रहा है अपितु एक गलत दिशा में भी जा रहा है, जैसा इस पुस्तक में उसके हिन्दूकरण के सन्दर्भ में निवेदन किया जा चुका है। मेरी तुच्छ सम्मति में इसके दो मुख्य कारण हैं एक तो यह कि—हमारे देश की स्वाधीनता का

आन्दोलन महात्मा गाँधी जैसे धार्मिक राजनेता के नेतृत्व में संचालित होना। तत्काल परिस्थिति में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जिस राष्ट्रीय विचार धारा को स्वीकार किया गया उसका आधार हमारे देश की वास्तविक सांस्कृतिक प्रेरणा न होकर अंग्रेजी शासन से मुक्त होने के लिए आवश्यक व्यूह रचना थी। विदेशी शासन का भविष्य सदा शासित लोगों की आपसी फूट पर निर्भर होता है। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना एक प्रकार से उससे पहले के दीर्घकालीन विदेशी मुस्लिम शासन के ह्रास के परिणामस्वरूप हुई। उसका एक परिणाम तो यह निकला कि कांग्रेस के नेतृत्व में भारतीय मुसलमानों को इस स्वाधीनता आन्दोलन में सम्मिलित करने के लिए कांग्रेस को अंग्रेजों से होड़ या प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी, किन्तु सत्ता हाथ में होने के कारण अंग्रेजी शासन को इस होड़ में सदा वरीयता मिली। इस अन्तर को यह कहकर स्पष्ट किया जा सकता है कि जहाँ अंग्रेज मुसलमानों को तत्काल भुगतान होने वाला चैक देने की स्थिति में थे, वहीं कांग्रेस का नेतृत्व उन्हें केवल भविष्य में भुगतान होने वाले चैक का प्रलोभन दे सकती थी और वह भी ऐसे बैंक के नाम जिसकी स्थापना भविष्य में होने वाली थी अर्थात् स्वाधीनता प्राप्ति के बाद। कांग्रेस की इस अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति का यह परिणाम स्वाभाविक था जो देश के विभाजन या पाकिस्तान के जन्म के रूप में आज हमारे सामने है। इस घटनाक्रम का विस्तृत विवरण यहाँ अप्रासंगिक होगा इसलिए केवल आर्यसमाज की दृष्टि से उसका विवेचन करना हो तो यह कहा जा सकता है कि इस असमान होड़ से सहमत न होने पर भी आर्यसमाजियों के लिए इस स्वाधीनता संग्राम से अलग रहना असम्भव था क्योंकि जैसा ऊपर स्पष्ट किया गया है आर्यसमाज की जन्मघूटी में ही देशप्रेम और देशभक्ति ही नहीं विदेशी शासन के विरुद्ध राजद्रोह की भावना निहित थी, किन्तु कांग्रेस और विशेषकर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में आयोजित इस स्वाधीनता संग्राम में सम्मिलित होने पर

आर्यसमाज को एक बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। जिन भारतीय आदर्शों और मूल्यों पर ऋषि दयानन्द ने उसकी स्थापना की थी थी उनके बारे में इस आन्दोलन में सम्मिलित होने पर आर्यसमाज को समझौता करना पड़ा और वह धीरे-धीरे अपनी विशेषता और भिन्न अस्तित्व खोने लगा। उदाहरण के लिए धार्मिक क्षेत्र में मूर्ति-पूजा जैसे राष्ट्रीय अभिशाप तथा बहुदेवतावाद जैसे बौद्धिक अन्ध-विश्वास और सामाजिक क्षेत्र में जातिवाद जैसे राष्ट्रीय एकता के शत्रु और बाल विवाह जैसी महिला विरोधी कुरीतियों के बारे में राजनैतिक विवशता और वोट प्राप्ति की होड़ में अपनी इन मौलिक मान्यताओं के प्रति उसका आग्रह शिथिल होने लगा।

धर्मनिरपेक्षता की विकृति :

व्यापक अर्थ में धर्म कोई मजहब, रिलीजन पन्थ या सम्प्रदाय नहीं है किन्तु हमने अपने संविधान में धर्म निरपेक्षता का जो आदर्श स्वीकार किया है उसे मजहब या रिलीजन के अर्थ में मानकर भी यह कहा जा सकता है कि वह वास्तव में धर्म निरपेक्ष न होकर सर्व धर्म साक्षेप विचार धारा है जिसके परिणामस्वरूप जहाँ आज हम एक वास्तविक धर्म निरपेक्ष राज्य के गुणों और लाभों से वंचित हैं वहीं एक धार्मिक या मजहबी राज्य की प्राय: सब बुराइयों और हानियों से ग्रसित हैं। धर्म निरपेक्ष राज्य का सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि उसमें बिना किसी धार्मिक भेदभाव के समानता और एकता पर प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था होती है किन्तु उसके स्थान में प्राय: सब धर्मों की बुराईयों और विभिन्नता पर आधारित असमानता पर आश्रित शासन व्यवस्था का हमारा देश शिकार बनता जा रहा है। यदि कोई एक धर्म राज्य का आधार नहीं हो सकता और न होना चाहिए तो सब या अनेक धर्मों को उसका आधार बनाना कैसे उचित हो सकता है? इसलिए सब धर्मों का समान आदर करने की जो धर्म निरपेक्षता की परिभाषा हमने स्वीकार की है, वह उतनी ही गुना अधिक हानिकारक है जितनी

गुना एक धर्म के स्थान में अनेक धर्मों पर आधारित राज्य की कल्पना है। यह दोष इसलिए भी अवश्यम्भावी है कि प्रत्येक धर्म के साथ कुछ ऐसे तर्क विहीन विश्वास रीति-रिवाज और परम्पराएँ जुड़ी होती हैं जिनको आज के वैज्ञानिक युग में कोई भी आधुनिक और प्रगतिशील राज्य स्वीकार नहीं कर सकता।

खिलाफत और धम निरपेक्षता :

हमारे देश में इस प्रकार की विकृत धर्म निरपेक्षता का प्रारम्भ संभवत: 1920 के खिलाफत आन्दोलन से हुआ है। इस्लाम में राष्ट्रीयता का आधार देश नहीं धर्म है। कुछ राष्ट्रीय मुसलमानों के अपवाद को छोड़कर यह अप्रिय सत्य स्वीकार करना चाहिये कि स्वाधीनता के आन्दोलन में जिन मुस्लिम नेताओं का सहयोग आवश्यक समझा गया उसे प्राप्त करने के लिए देश को कोई भी कीमत देनी पड़ी। क्योंकि मोहम्मद अली, शौकत अली जैसे जिन राजनेताओं के हाथ में मुसलमानों का नेतृत्व था उनकी प्राथमिक निष्ठा अपने धर्म इस्लाम के प्रति थी और इसके बाद देश के प्रति। इसका स्पष्ट उदाहरण खिलाफत आन्दोलन से मिलता है।

खिलाफत आन्दोलन क्या था ? :

इस्लाम में खलीफा का वही स्थान है जो ईसाई धर्म में पोप का। जैसा स्पष्ट किया गया है कि इस्लाम में राजनीति या राज्य की व्यवस्था धर्म का ही एक अभिन्न अङ्ग है। इस्लाम के संस्थापक मोहम्मद साहब न केवल उसके अन्तिम पैगम्बर ही थे अपितु वे जिहाद अर्थात् धार्मिक युद्धों में सेनापति और विजय के बाद स्थापित राज्यों के अध्यक्ष या शासक भी थे। उसी परम्परा में खलीफा उनके बाद उनके प्रतिनिधि के रूप में न केवल समस्त संसार के मुसलमानों का धर्माध्यक्ष ही समझा जाता था बल्कि वह मुस्लिम राज्यों का भी सर्वोच्च अधीक्षक माना जाता था। 1914 में प्रारम्भ हुए द्वितीय महायुद्ध के समय खलीफा का मुख्यालय तुर्की में था सन् 1920 में जर्मनी की पराजय के बाद अंग्रेजों ने खलीफा को

पदच्युत कर दिया क्योंकि उसके नेतृत्व में टर्की ने अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी के साथ मिलकर युद्ध में भाग लिया था। उस समय गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस का भारत में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था गाँधीजी की यह मान्यता थी कि मुसलमानों के सहयोग के बिना यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता और इसलिए उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता को एक प्रकार से इस स्वाधीनता आन्दोलन का आवश्यक अंग स्वीकार किया। भारतीय मुसलमान तुर्की में खिलाफत अर्थात् खलीफा के वर्चस्व को पुनः स्थापित करने के लिए देश की आजादी से अधिक चिन्तित थे और परिणामस्वरूप उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेस ने खिलाफत आन्दोलन को एक प्रकार से अपनी स्वाधीनता आन्दोलन का अभिन्न अंग बना लिया। किन्तु स्वयं टर्की में कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में वहाँ की जनता खिलाफत के स्थान में अपना राष्ट्रीय शासन स्थापित करना चाहती थी, इसलिए मुद्दे सुस्त गवाह चुस्त की कहावत के अनुसार भारतीय मुसलमानों का खिलाफत की पुनस्थापना का यह आन्दोलन सर्वथा असफल हो गया किन्तु उसका एक दुष्परिणाम देश के हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य और विरोध को और अधिक उग्र और कटु बनाने में हो गया। दक्षिण के मालाबार प्रदेश में अरब मूल के मुसलमानों ने जिन्हें "मोपला" कहा जाता था, खिलाफत आन्दोलन को अंग्रेजों के बाद भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना का आन्दोलन मानकर निर्दोष हिन्दुओं पर आक्रमण करने का बहाना बना लिया। इसी प्रकार देश में खिफालत आन्दोलन के बाद जितने व्यापक और गम्भीर हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे हुए उतने पहले कभी नहीं थे। इस पृष्ठभूमि में यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि हमारे राजनेताओं ने हिन्दू मुस्लिम एकता के नाम पर जो मुस्लिम तुष्टि-करण की नीति अपनाई, हमारी वर्तमान धर्म निरपेक्षता की विकृति उसी का परिणाम है। इस देश में मुसलमानों के अतिरिक्त और भी धार्मिक अल्पसंख्यक लोग रहते हैं जिनमें ईसाई और पारसी

विशेष उल्लेखनीय है। किन्तु जहाँ भारत में मुसलमानों की संख्या पाकिस्तान के मुसलमानों से भी अधिक है वहीं वे एक ऐसी संगठित शक्ति हैं कि तथाकथित बहुसंख्यक हिन्दुओं से उन्हें किसी प्रकार की सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है। आज भी अधिकांश दंगों में आक्रामक भूमिका जात-पाँत, भाषा और प्रान्तीयता में विभाजित हिन्दुओं की ओर से किये जाने के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। वस्तुतः इस देश में आज भी अपने संगठन और धार्मिक कट्टरता के कारण 12 करोड़ मुसलमान ही वास्तव में विभाजित 70 करोड़ हिन्दुओं के मुकाबले परिणाम और प्रभाव की दृष्टि से बहुसंख्यक है। दूसरी ओर उनसे नगण्य संख्या में होने वाले भारतीय ईसाई और यहाँ तक कि अँगुलियों पर गिने जाने वाले पारसी धर्म के अनुयायी कभी यह शिकायत नहीं करते कि उन्हें बहुसंख्यक हिन्दुओं से किसी प्रकार का भय है। ये जहाँ विभाजित हिन्दुओं की उदारता का द्योतक है वहीं ईसाई और पारसी आदि अल्पसंख्यों की धर्म के स्थान में देश के प्रति निष्ठा का भी द्योतक है।

आर्य समाज और धर्म निरपेक्षता :

एक आर्य समाजी होने के नाते मैं अपने देश में सही अर्थों में धर्म निरपेक्ष राज्य का समर्थक रहा हूँ और हूँ उसके जहाँ अन्य अनेक कारण है उनमें से एक कारण यह भी है कि तथाकथिक बहुसंख्यक हिन्दू धर्म के धार्मिक अंधविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों का आर्य समाज ने कभी समर्थन नहीं किया। दूसरा कारण यह भी है कि अपने आन्तरिक भेदों के परिणामस्वरूप बहुसंख्यक हिन्दू राज्य शासन में कोई सर्वसम्मत तो दूर बहुसम्मत धार्मिक नीति का अनुसरण भी नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में मेरी यह मान्यता है कि जहाँ हम अपने राजकाज के कार्यों में अनेक अवसरों पर हिन्दू धर्म की इन मान्यताओं का प्रदर्शन करके अल्पसंख्यक और विशेषकर भारतीय मुसलमानों को शंकित करते हैं, वहीं धर्म निरपेक्षता के नाम पर मुसलमानों की अनुचित धार्मिक माँगों को प्रोत्साहित करने के उपरान्त भी उन्हें वास्तविक धर्म निरपेक्षता का अनुसरण कराने में सफल नहीं हो पाते। धर्म निरपेक्ष राज्य की पहचान भारतीय

संदर्भ में तभी हो सकती है जब देश के हिन्दू राजनेता किसी भी राजकीय कार्य में तथाकथित हिन्दू धार्मिक मान्याओं का प्रदर्शन न करे। अजमेर की दरगाह में प्रधानमन्त्री द्वारा चढ़ाई गई चद्दर या अन्य राजनेताओं द्वारा नियमित रूप से की जाने वाली जियारत वास्तविक धर्म निरपेक्षता का सूचक कैसे हो सकता है ? विशेषकर जब वही प्रधानमन्त्री या राजनेता अपने सरकारी दौरों के अवसर पर पुष्कर या अन्य तीर्थ स्थानों, मन्दिरों, तान्त्रिकों और हिन्दू धर्माध्यक्षों के यहाँ नतमस्तक होते हैं।

अन्त में उपर्युक्त सारे विवेचन का निष्कर्ष यही है कि यदि आर्य समाज को अपने भविष्य ही नहीं अपितु अस्तित्व को सुरक्षित करना हो तो उसे निष्ठापूर्वक देश की इस विकृत धर्म निरपेक्ष दलगत राजनीति से अलग रहना चाहिए और अपने राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्वरूप को बनाये रखना चाहिये। अन्यथा चाहे वह कोई भी राजनीतिक दल हो उसम सामूहिक ही नहीं आर्य समाज के द्वारा भी किया गया समर्थन आर्य समाज की मूलभूत मान्यताओं के साथ समझौता किये बिना सम्भव नहीं हो सकता। इसी कारण सार्वदेशिक सभा के तत्वावधान में आर्य समाज के पुनर्गठन की आवश्यकता और उपायों पर विचार करने के लिए मेरे संयोजकत्व में जो समिति गठित की गई थी उसके द्वारा अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी सिफ़ारिश की गई थी कि आर्य समाज का नेतृत्व किसी भी ऐसे राजनेता के हाथ में नहीं होना चाहिए जिसका उद्देश्य आर्य समाज के माध्यम या सहयोग से राजनैतिक सत्ता प्राप्त करना हो।

यदि आर्य समाज अपने व्यक्तियों और संगठनों पर उस प्रकार का नियन्त्रण नहीं कर सकता जैसा राष्ट्रीय स्वयं सेवक स्वयं राजनीति से पृथक रहते हुए भी अपने संगठनों जैसे जनसंघ, भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिन्दू परिषद विद्यार्थी परिषद तथा भारतीय शिक्षा समिति आदि पर करता है तो उसका हित इसी में है कि वह अपने आपको किसी राजनीति दल का पिछलग्गू होने के स्थान में अपने विशुद्ध धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप और स्वतन्त्रता को बनाये रखें।

(6)

भारतीय मुसलमानों की समस्या

देश के विभाजन के बाद भारत मुसलमानों की स्थिति के सम्बन्ध में अनेक परस्पर विरोधी दृष्टिकोण प्रचलित हैं एक पक्ष का कहना यह है कि धर्म के आधार पर अपने पृथक राष्ट्र होने की मान्यता पर भारतीय मुसलमानों ने पाकिस्तान के रूप में अपना एक पृथक राज्य स्थापित करके जो बँटवारा स्थापित कर लिया है उसके बाद उन्हें अब इस देश में अन्य भारतीयों से पृथक कोई और विशेष अधिकार माँगने का कोई औचित्य नहीं है दूसरा दृष्टिकोण यह है कि आधुनिक भारत के वर्तमान मुसलमान दो राष्ट्र के नाम पर किये गये बँटवारे या विभाजन के लिये उत्तरदायी नहीं है और उन्हें अब भी एक धार्मिक अल्पमत होने के कारण सब आवश्यक विशेष अधिकार प्राप्त होने चाहिये। दुर्भाग्य से इन दोनों विचार-धाराओं का आधार केवल सैद्धान्तिक न होकर राजनैतिक भी हो गया है और इसीलिए दोनों विचारधाराओं के समर्थक अपने-अपने राजनैतिक स्वार्थ की दृष्टि से भी उसका विवेचन करते हैं धर्म निरपेक्षता के नाम पर कुछ दल इन मुसलमानों को न केवल समान अधिकार ही देना चाहते हैं अपितु उन्हें विशेष संरक्षण और विशेष अधिकार देने के भी पक्ष में है, स्वभावत: पहला पक्ष इसे सैद्धान्तिक और राष्ट्रीय दोनों दृष्टियों से अनुचित मानता है।

देश के बँटवारे का उत्तरदायित्व किस पर :

हिन्दू मुस्लिम एकता के मूल समर्थक महात्मा गाँधी हिन्दू राष्ट्र और मुस्लिम राष्ट्र के आधार पर देश के बँटवारे के अन्त तक विरुद्ध रहे दूसरी ओर कांग्रेस के श्री जवाहर लाल जैसे विशुद्ध राजनैतिक दृष्टिकोण से विचार करने वाले नेता तत्कालीन परि-

स्थितियों में विभाजन को अस्वीकार करने की स्थिति में नहीं थे विशेषकर जब विदेशी अंग्रेजी शासक भी मुसलमानों की इस माँग को स्वीकार करना देश को छोड़ने से पहले आवश्यक मानते थे। इस सम्बन्ध में यह बात महत्व की है कि हिन्दू मुस्लिम दो राष्ट्र के सिद्धान्त के आधार पर पाकिस्तान की माँग करने वाले प्रमुख मुसलमान नेता उन प्रान्तों और राज्यों के थे जहाँ मुसलमानों का अल्पमत था विभाजन के जन्मदाता श्री मोहम्मद अली जिन्ना महाराष्ट्र और गुजरात जैसे हिन्दू बाहुल्य प्रदेश के निवासी थे इसके बाद विभाजन के लियाकत अली जैसे समर्थक उत्तर प्रदेश के थे जहाँ मुसलमानों का एक शक्तिशाली और प्रभावशाली अल्पमत था इसके विपरीत मुस्लिम बहुमत वाले पंजाब के नेता अन्त तक विभाजन का समर्थक करने में हिचकते रहे और 99 प्रतिशत से भी अधिक मुस्लिम प्रान्त उत्तर-पश्चिम या फ्रन्टियर के मुसलमानों ने तो इसका स्पष्ट विरोध तक किया, यही स्थिति कश्मीर के मुसलमानों की भी थी। इसका एक कारण तो यह था कि जिन प्रान्तों में मुस्लिम बहुमत था उसमें उन्हें हिन्दू बहुमत या राज्य से कोई खतरा नहीं था और तत्कालीन संविधान के अन्तर्गत भी वे इन प्रान्तों में बहुमत प्राप्त कर शासन की बागडोर अपने हाथ में रख सकते थे, दूसरी ओर महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश और बिहार आदि के अल्पसंख्यक मुसलमान ही एक प्रकार से पाकिस्तान के जन्मदाता और समर्थक थे। इस सम्बन्ध में किये गये जनमत संग्रह में भी अल्पसंख्य मुसलमानों ने प्राय: एकमत से देश के विभाजन का समर्थन किया था आज पाकिस्तान बनने के लगभग 47 वर्ष बाद जहाँ मुस्लिम बाहुल्य राज्यों के मुसलमान ही एक प्रकार से पाकिस्तान के वास्तविक शासक हैं जैसे पंजाब, सिन्ध, बलूचिस्तान, सीमान्त प्रान्त आदि जबकि दूसरी ओर भारत के मुस्लिम अल्पसंख्यक राज्यों से गये मुसलमान आज भी पाकिस्तान में मुजाहिर या शरणार्थी बने हुए हैं। इतना ही नहीं बिहार के

लाखों मुसलमान इतने वर्षों बाद भी बंगला देश में पाकिस्तान जाने की प्रतीक्षा में कष्ठ उठा रहे हैं किन्तु पाकिस्तान उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहता। इससे स्पष्ट है कि स्वयं पाकिस्तान के शासक आज भी हिन्दू मुस्लिम धर्म के आधार पर दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को व्यवहार में अस्वीकार कर चुके हैं। पाकिस्तान में सिन्धी, शिया और अहमदिया मुसलमानों के विरुद्ध संगठित नरसंहार भी इसके प्रमाण हैं।

इस सम्बन्ध में यह भी बात ध्यान देने योग्य है कि भारत से पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों में प्रायः वे सब लोग हैं जो अविभाजित भारत में भी शक्ति सम्पन्न थे। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के जमींदार तथा सारे देश के उच्च शिक्षित वकील, डॉक्टर या फिर सरकारी अधिकारी तथा सैनिक अधिकारी व सम्पन्न व्यापारी प्रायः सब जगह पाकिस्तान में बस गये किन्तु जिन पिछड़े गरीब और अशिक्षित लोगों के बहुमत के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण हुआ उनमें से अधिकाँश अब भी भारत में ही रह रहे हैं जिन्हें यहाँ अब भारतीय बने रहकर शाँतिपूर्वक रहने देने के स्थान में पाकिस्तान के शासक और कट्टरपंथी मुसलमान उन्हें भी भारत के विरुद्ध उकसा रहे हैं। भारतीय मुसलमानों को भी अपने देश अर्थात् भारत के विरुद्ध और वह भी धर्म के नाम पर उकसाते रहते हैं। ऐसी स्थिति में स्वाधीनता के बाद रह रहे इस देश के मुसलमानों के सामने यह विकट समस्या है कि वे अपनी रक्षा और विकास के लिए क्या करें। पाकिस्तान उन्हें उकसा कर केवल उनकी कठिनाईयाँ ही बढ़ा सकता है, उनकी कोई सहायता नहीं कर सकता क्योंकि एक अलग राष्ट्र होने की अपनी पहले की मूर्खतापूर्ण मनोवृति के कारण उन्हें बहुमत के हिन्दुओं की आशंका और संदेह का शिकार होना पड़ता है। इस स्थिति से उभरने के लिए भारतीय मुसलमानों का वर्तमान नेतृत्व भी न केवल प्रभावहीन है बल्कि स्वयं दुविधा का शिकार है।

इन नेताओं का यह कहना है कि भारत में जो मुसलमान रह गये हैं उन्हें देश के विभाजन के लिए दोषी नहीं कहा जा सकता है किन्तु यह तभी सम्भव होगा जब वे अपने व्यवहार से यह सिद्ध करें कि उनकी जिन मान्यताओं के परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ उसका वे खुले तौर पर विरोध करते हैं केवल यह कहना काफी नहीं है कि भारत में वर्तमान पीढ़ी के मुसलमानों ने देश के विभाजन का समर्थन नहीं किया था क्योंकि पहले तो वे उस समय पैदा ही नहीं हुए थे तो समर्थन या विरोध कैसे कर सकते थे, दूसरे धर्म के आधार पर दो राष्ट्र के जिस सिद्धान्त पर देश की विभाजन हुआ उसके सम्बन्ध में वर्तमान मुसलमानों का क्या दृष्टिकोण है, यह उनके द्वारा व्यवहार में स्पष्ट हुए बिना वे अपने बुजुर्गों द्वारा किये गये विभाजन के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकते क्योंकि विभाजन तत्कालीन मुसलमानों या उनके वर्तमान वंशजों के केवल मतों से नहीं हुआ था बल्कि इस मान्यता के कारण हुआ था कि इस्लाम में राष्ट्रीयता का आधार देश नहीं धर्म है ।

इतना ही नहीं आज भी मुस्लिम धार्मिक नेता दारुल इस्लाम और दारुल हरब के मौलिक मान्यता के आधार पर यह उपदेश देते हैं कि जिस देश में मुसलमानों का शासन नहीं है वह दारुल हरब है अर्थात् शत्रु का देश जिसके प्रति अल्पमत में रहने वाले वहाँ के मुसमानों की कोई निष्ठा नहीं हो सकती बल्कि वहाँ भी इस्लामी शासन की स्थापना करना उनका धार्मिक कर्तव्य है ।

इस मान्यता के कारण ही न केवल भारत, पाकिस्तान तथा कश्मीर की समस्या बनी हुई है बल्कि वर्तमान भारतीय मुसलमानों की तथाकथित समस्याओं का भी यही एक मूल कारण है । जब तक वर्तमान भारतीय मुसलमानों का का नेतृत्व अपने व्यवहार से यह स्पष्ट नहीं करता कि वे देश के विभाजन के इस आधार को अस्वीकार कर चुके हैं और अब अन्य भारतीयों के समान अपने

आपको पहले भारतीय और बाद में मुसलमान समझते हैं तब तक वे देशभक्ति ही नहीं बल्कि धर्म निरपेक्षता पर भी अँगुली उठती रहेगी विशेषकर समय-समय पर उनके कुछ कट्टरपंथी अनुयायी पाकिस्तान की क्रिकेट टीम की विजय पर जश्न मनाकर अथवा पाकिस्तान के भारत विरोधी व्यवहार और प्रचार का समर्थन करके या पाकिस्तानी गुप्तचर विभाग के लिए कार्य करके यह शंका उत्पन्न करते हैं कि अब भी उनमें से कुछ व्यक्ति उस विचारधारा के समर्थक हैं जिसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान बना। स्वाभाविक है कि उनके ऐसे कार्यों तथा व्यवहार से अन्य भारतीयों में प्रतिक्रिया हो। इसलिए भारतीय मुस्लिम नेतृत्व का पहला कर्तव्य यह है कि वे साहसपूर्वक अपने व्यवहार और कथन दोनों द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करें कि स्वाधीन भारत के मुसलमान वास्तव में ही देश के विभाजन के लिए उत्तरदायी नहीं है।

धार्मिक साम्राज्यवाद :

आधुनिक राजनैतिक और आर्थिक साम्राज्यवाद उस प्राचीन सैनिक और धार्मिक साम्राज्यवाद का वर्तमान संस्करण है जिसमें अपनी सैनिक शक्ति के बल पर कमजोर राज्यों को पराजित करने की महत्त्वाकांक्षा और बाद में वहाँ तलवार के जोर पर अपने धर्म का प्रचार और प्रसार करना, विजेताओं का मुख्य लक्ष्य होता था साथ ही पराजित राष्ट्रों से आर्थिक लाभ तो प्राप्त हो ही जाता था। भारत पर इस्लाम के निरन्तर सैनिक आक्रमण होते रहे और उन सब में प्रायः भारतवासी हिन्दुओं की पराजय हुई। मुस्लिम शासकों द्वारा बुत परस्त और काफिर समझे जाने वाले हिन्दूओं को लोभ लालच के साथ बलपूर्वक इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये भी विवश किया जाता रहा। अपनी आन्तरिक सामाजिक और धार्मिक कमजोरियों के कारण हिन्दू आक्रमणकारियों का मुकाबला नहीं कर सके और बाद में अपने बचाव का एक मार्ग समझ कर यह कहना शुरू

कर दिया कि वे इस्लाम के विरोधी नहीं है। उन्हें इस्लाम के पैगम्बर और मजारों, दरगाहों पर भी उतना ही विश्वास है जितना अपने देवी देवताओं पर। उनकी यह धार्मिक उदारता केवल उनकी विवशता का द्योतक था। देश के अनेक संतों और सुधारकों ने जब यह देखा कि वे मुस्लिम शासकों की धार्मिक कट्टरता के सामने सर्वथा असहाय हैं तो उन्होंने उनकी धर्मान्धता से बचने के लिये यह मध्यम मार्ग स्वीकार कर लिया। यद्यपि कुछ घटनाओं से यह सिद्ध है कि यह "शरणम गच्छामि" का मार्ग भी सदा सफल नहीं हुआ। जैसा बाल हकीकत की दन्त कथा से स्पष्ट है कि उसके यह करने पर भी कि वह अपने धर्म के समान इस्लाम धर्म को भी सही मानता है, उसके जीवन की रक्षा नहीं हो सकी। क्योंकि उसने इस्लाम ही के स्थान में इस्लाम भी कहा। आधुनिक भारत में सर्व धर्म सम्भाव की धर्म निरपेक्षता की वर्तमान परिभाषा भी इसी ऐतिहासिक विवशता का एक परिणाम मात्र है। यही कारण है कि आज भी हिन्दू अपने अनेक मत पन्थों, देवी देवताओं और मन्दिरों के होते हुए भी अन्य धर्मों और विशेषकर इस्लाम के पीर, पैगम्बरों और दरगाहों के प्रति अपनी आस्था प्रदर्शित करने के लिये उत्सुक रहते हैं। जिसे हम अपनी धर्म निरपेक्षता कहते हैं जब कि वास्तविक धर्म निरपेक्ष राज्य का अर्थ यह है कि राज्य सब धर्मों के प्रति समान व्यवहार करे। समान व्यवहार और समान आदर में अन्तर है, व्यवहार की समानता का उद्देश्य यह है कि राज्य सबको समान अधिकार प्रदान करे चाहे उनका कोई भी धर्म हो किन्तु समान आदर के नाम पर राज्य को परस्पर विरोधी ही नहीं राष्ट्र विरोधी धार्मिक मान्यता और अन्य क्रियाओं तक को संरक्षण देना पड़ता है जैसा हमारे देश में हो रहा है।

राजनतिक दासता का दूसरा परिणाम :

हिन्दुओं की तथाकथित यह धार्मिक उदारता और जीवन के प्रति उनका परलोक केन्द्रित दृष्टिकोण भी हमारे देश की लम्बी

राजनैतिक दासता और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न दयनीय तथा पराजई मनोवृति का परिचायक है।

धार्मिक क्षेत्र में लम्बी दासता और निरन्तर पराजय के परिणामस्वरूप जहाँ हमने धार्मिक उदारता और सर्व धर्म सम्भाव का विवशताजन्य गुण (Virtue of Necessity) स्वीकार कर लिया है, वही ऐसी राजनैतिक दयनीयता का दूसरा दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम अधिकांश हिन्दुओं के जीवन और चरित्र पर भी पड़ने से न रुक सका। इस जन्म में पराजय और दासता को सहन करते-करते उन्होंने यह कहकर अपनी निर्बलता को ढकने का प्रयास किया कि मनुष्य का सांसारिक जीवन तो एक माया है और एक ऐसा बन्धन या कैद खाना है जिससे जल्दी से जल्दी छूटने के लिये उन्हें प्रयत्न करना चाहिये और इस प्रकार तथाकथित परलोक या दूसरे लोक में पहुँचकर इस लोक की इन दुर्गतियों से छूटकर स्वर्ग में प्राप्त होने वाले काल्पनिक सुखी जीवन के लिये प्रयत्न करना चाहिये। दूसरी ओर ऋषि दयानन्द के अनुसार "यतो अभ्युदय निश्रयस् सिद्धि: सधर्म:" अर्थात इस जीवन और जगत में उन्नति और यश के बाद ही स्वर्ग या परलोक की कामना का नाम ही धर्म है।

राष्ट्रीय चरित्र :

अमेरिका के एक प्रसिद्ध लेखक सन्डरलेण्ड ने अपनी ब्रिटिश शासन में प्रकाशित पुस्तक (India in Bondage) अर्थात "पराधीन भारत" नामक पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि लम्बे विदेशी शासन में जहाँ अनेक अन्य हानियां होती हैं वहाँ उसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम पराधीन लोगों के चरित्र के पतन के रूप में उभर कर आता है। उपरोक्त दोनों परिणाम सन्डरलेन्ड के इस निष्कर्ष को सही सिद्ध करते हैं। दूसरे शब्दों में लम्बी विदेशी दासता का सर्वाधिक दुष्परिणाम उस देश के लोगों के राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास होना है इसलिये स्वाधीन भारत के सामने आज

सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि वह किस प्रकार केवल धर्म के नाम पर व्यक्तिगत चरित्र के लिये झूठे आँसू बहाने के स्थान में अपने देशवासियों के राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने का प्रयत्न करें।

संक्षेप में राष्ट्रीय चरित्र का अर्थ यह है कि प्रत्येक भारतवासी अपने कुछ विशिष्ठ गुणों से इस प्रकार पहचाना जाये कि संसार के समस्त देश उसके निवासियों को केवल एक भारतवासी के रूप में जान सकें न कि हिन्दू, मुसलमान और ईसाई या पंजाबी, गुजराती मद्रासी आदि के रूप में। दूसरे शब्दों में इस देश के वासी सबसे पहले भारतीय हों और दूसरों की दृष्टि में भी समझे जावें उसके बाद हिन्दू मुसलमान या कुछ और।

आर्य समाज हिन्दू विदाउठ हिन्दूइज्म आदि रचनायें लोकप्रिय हैं, इसी प्रकार हिन्दी में उनके द्वारा रचित राष्ट्रीय चरित्र एवं एकता, देश धर्म और हिन्दू समाज को आर्य समाज की देन, आर्य समाज हिन्दू धर्म का सम्प्रदाय नहीं, हैदराबाद सत्याग्रह, मेरी तीसरी विदेश यात्रा के संस्मरण, नागरिकशास्त्र तथा आर्य शिक्षण संस्थाओं का भविष्य और आर्य समाज का वर्तमान और भविष्य जैसी लघु पुस्तिकायें सम्मिलित है।

सार्वदेशिक आर्य शिक्षण संस्था परिषद की ओर से उनके द्वारा सम्पादित पहली कक्षा से 11 कक्षा तक के लिये धर्म शिक्षा की पुस्तक माला अनेक आर्य शिक्षण संस्थाओं में प्रचलित है। इसी परिषद द्वारा डी.ए.वी. आदि संस्थाओं की निर्देशिका भी है।

हिन्दी अंग्रेजी की पुस्तकों तथा लघु पुस्तिकाओं के अतिरिक्त वाब्ले जी के सामयिक समस्याओं और प्रश्नों पर हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, मॉडर्न रिव्यू Modern Review, News Chronicle न्यूज क्रोनिकल जैसे अंग्रेजी व सरस्वती विशाल भारत जैसे मासिक तथा अनेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लेख प्रकाशित होते रहे हैं. इसी प्रकार विकास पब्लिशर्स द्वारा प्रकाशित उनकी आर्य समाज पर अंग्रेजी पुस्तक आर्यसमाज हिन्दू विदाउट हिन्दूइज्म The Arya Samaj Hindu without Hinduism के सम्बन्ध में अंग्रेजी में लम्बी समीक्षायें प्रकाशित हुई है।

आर्य समाज नामक उनकी अंग्रेजी की एक लघु पुस्तिका सार्वदेशिक सभा द्वारा भी प्रकाशित की गई है। सन् 1971 में उन्हें भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति द्वारा जो अभिनन्दन ग्रंथ प्रस्तुत किया गया था उसमें अनेक भारतीय तथा विदेशी प्रतिष्ठित व्यक्तियों, विश्वविद्यालयों के कुलपतियों, राज्यपालों, केन्द्रीय तथा राज्य स्तरीय मंत्रियों और अनेक प्रमुख आर्य विद्वानों ने उनके सम्बन्ध में प्रशंसात्मक संस्मरण लिखे है।

प्राचार्य वाब्ले जी अपनी वर्तमान 87 वर्ष की आयु में भी अजमेर की अनेक संस्थाओं का संचालन और मार्गदर्शन सर्वथा अवैतनिक रूप से प्रतिदिन 6 घंटे कार्यालय में बैठकर करते हैं।

—प्रो. बाबूराम शास्त्री

अध्यक्ष

दयानन्द शोधपीठ, अजमेर

लेखक का परिचय—

आचार्य दत्तात्रेय (वाब्ले) आर्य, एम.ए. राजनीतिशास्त्र, इतिहास, प्रधान आर्य समाज अजमेर, वरिष्ठ उपप्रधान, आर्यसमाज शिक्षा सभा, संस्थापक निदेशक दयानन्द वैदिक शोधपीठ, पूर्व संस्थापक प्राचार्य दयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पूर्व वरिष्ठ उपाध्यक्ष अजमेर नगर परिषद, सदस्य केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद्, सदस्य विद्वत परिषद् आगरा विश्वविद्यालय एवं राजस्थान विश्वविद्यालय, सदस्य डी. ए. वी. कॉलेज प्रबन्ध समिति दिल्ली, अध्यक्ष दयानन्द बाल सदन अजमेर आदि 60 वर्षों से आर्यसमाज संगठन से सम्बद्ध, मानद सचिव अन्तर्देशीय परिषद् (डी. ए. वी. संस्थाएं), भारतीय रेड क्रॉस समिति अजमेर के चैयर-मेन, पूर्व प्रथम श्रेणी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, गुरूकुल काङ्गडी विश्व - विद्यालय द्वारा गोवर्धन पुरस्कार से सम्मानित, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तरंग सदस्य तथा राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व उपाध्यक्ष, प्रसिद्ध शिक्षाविद्, अग्रणी समाज सेवी, अजमेरस्थ 15 आर्य शिक्षण संस्थाओं के संचालक, सफल प्रशासक लेखक तथा चिन्तक व महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त।

विदेश यात्रा :—1956 में सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक आदान-प्रदान के अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम में उन्हें अमेरिका, इंग्लेण्ड तथा यूरोप के अनेक देशों में निमंत्रित होकर जाने का गौरव प्राप्त हुआ, 1989 में वाब्ले जी को अमेरिका के मार्शल विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में निमंत्रित किया गया 1957 में वे अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास कान्फ्रेंस तथा फिलेडेलफिया अमेरिका में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय रोटरी सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में उन्हें निमंत्रित किया गया।

हिन्दी अंग्रेजी की प्रकाशित रचनायें—प्राचार्य वाब्ले जी हिन्दी अंग्रेजी के यशस्वी लेखक के रूप में भी जाने जाते है। अपनी विदेश यात्रा के संस्मरण के रूप में उनकी 'दा टू वे ट्रेफिक' 'The Two way Traffic' पुस्तक तथा विदेश में उनके भाषणों के सार के रूप में 'मोडर्न इंडिया एण्ड हिन्दूइज्म' 'Modern India and Hinduisum' तथा आर्य समाज के वास्तविक स्वरूप के संबंध में

(शेष अन्दर के आवरण पर)